ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केत पूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

यज्ञ-रहस्य

अर्थात्

देव-यज्ञ विधान

प्रथम भाग

लेखक—

श्री महात्मा टेकचन्द जी

(प्रभु-आश्रित)

प्रकाशक—

म० मथुरादास भीमसेन आढ़तियाँ

टोबा टेकसिंह (ज़िला लायलपुर)

[... १०००] [मूल्य ॥)

...र्तिक १९९८ तदनुसार नवम्बर १९४१

श्री पूज्य महा०टेकचन्दजी महाराज (प्रभुआश्रित)

की

अपूर्व और शिक्षादायक पुस्तकें

श्री पूज्य महात्मा जी महाराज की लिखित पुस्तकों का मूल्य **नाममात्र** इस भाव से रखा गया है कि निर्धन से निर्धन सज्जन भी इनके स्वाध्याय से वंचित न रह कर अपने जीवन को उन्नत करने का अवसर प्राप्त कर सकें। जो भी **लेषमात्र नफ़ा** इन पुस्तकों की बिक्री से होगा वह इसी ही **प्रचार के कार्य** में लगाया जावेगा। श्री पूज्य महात्मा जी महाराज का तथा अन्य किसी और सज्जन का पुस्तकों के आर्थिक लाभ से कोई ज़ाती प्रयोजन नहीं है। अतः सब पाठकों की सेवा में नम्रतापूर्वक निवेदन है कि यथाशक्ति इन पुस्तकों को अपने मित्रों तक पहुँचा कर पुण्य के भागी बनें।

१. **पथ-प्रदर्शक** (हिन्दी)—दैनिक स्वाध्याय के लिये अपूर्व शिक्षाओं से भरपूर, जीवनपथ के लिये सच्ची पथ-प्रदर्शक, बच्चों-बूढ़ों और स्त्री-पुरुषों के लिये समानरूप से उपयोगी, पृष्ठ संख्या १७४; मूल्य ।≈), उर्दू पैग़ामेरहबर =)॥

२. **गुप्तज्ञान गायत्री अर्थात् गायत्री-रहस्य**—इसमें गायत्री-मन्त्र की बड़ी मनोहारिणी तथा सारगर्भित व्याख्या कथा रूप में करके उसकी महत्ता प्रगट की गई है और यह बताया गया है कि सब वेदमन्त्रों में गायत्री-मन्त्र का महत्व तथा गौरव सब से अधिक क्यों माना जाता है? इसमें अति रोचक रूप से गायत्री जाप का माहात्म्य लिखा गया है तथा आध्यात्म मार्ग पर चलने वालों के लिये अन्य
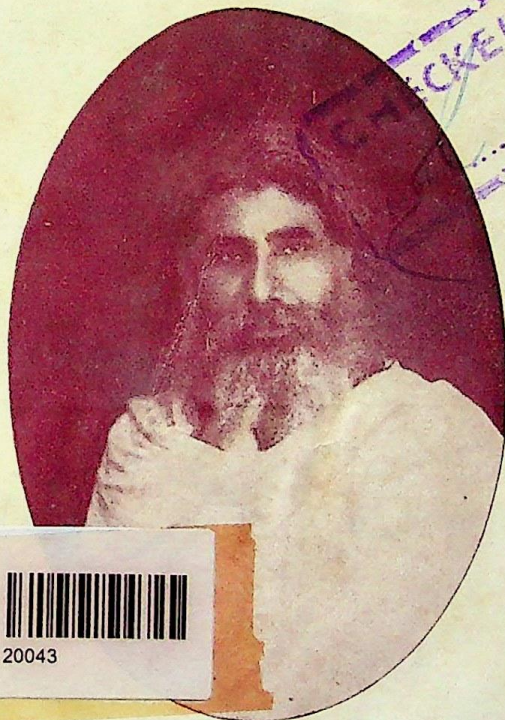
श्री महात्मा टेक चन्द जी महाराज
(प्रभु आश्रित) टोबा टेक सिंह

شری مہاتما ٹیک چندجی مہاراج پربھو آشرت

CHAND PRESS LAHORE.

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

ओ३म्

धन्यवाद

"यज्ञ-रहस्य" नामक पुस्तक उर्दू में छपी थी। यज्ञ प्रेमियों को अति लाभदायक साबित हुई और हिन्दी में छपने के लिये इच्छा प्रकट की। हिन्दी अनुवादक न मिलने से मजबूरी रही। उर्दू पुस्तक लगभग खतम हो रही थी कि श्री पं० जगन्नाथ जी, स्नातक, गुरुकुल कांगड़ी, से ला० रामचन्द्र जी, मेरे मित्र के बात करने पर उन्हों ने बड़ी उदारता से इस पुस्तक के शब्दों और मजमून को बिना बदले हिन्दी लिपी बद्ध करने की बड़ी कृपा की। इतनी जल्दी यह पुस्तक जनता के सन्मुख हिन्दी में न आ सकती यदि स्नातक जी इस का अनुवाद या लिपी हिन्दी भाषा में न कर देते और कविराज पं० दीनानाथ जी शास्त्री वैद्यवाचस्पति आयुर्वेदाचार्य प्रोफैसर सनातन धर्म प्रेमगिरी आयुर्वैदिक कालिज, लाहौर, परूफ देखने में सहायता न करते। स्नातक जी का आग्रह रहा कि उन का नाम किसी भी सूरत में न लिखा जावे परन्तु मैं अपने कृतघ्नता के दोष से बचने के लिये उनका हार्दिक धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकता। दोनों महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं। मैं कोई भी और बदल भेंट नहीं कर सकता, केवल परमेश्वर के दरबार में प्रार्थना करता कि उन्हें प्रभु अपनी निज दया और आशीर्वाद का पात्र बनावें।

ला० रामचंद्र जी और ला० जोधाराम जी का तो मैं हर समय धन्यवाद करता ही हूं।

भवदीय

टेकचंद प्रभु आश्रित

* ॐ *

समर्पण

आज के पवित्र दिवस होली की पूर्णमासी के व्रत में बैठा हुआ मैं क्या देख रहा हूं ? शाम होने वाली है, अभी सूर्यनारायण अपने प्रकाश से कुछ कुछ जनता को लाभ दे रहे हैं। एकाएक मेरी आंखों के सामने प्यारा अर्जुनदेव यज्ञ हवन की तैयारी के लिये आंगन में दरियां बिछा रहा है, और हवन-यज्ञ का सब सामान--कुंड, जलपात्र, सामग्री, घी, समिधा, दियासलाई, कपास--बड़ी सावधानी से और ढंग से जोड़ जोड़ कर रख रहा है। मैंने आंख खोली। देखा—न तो अर्जुनदेव है, न हवन का सामान। मैं तो जतोई में व्रत कर रहा हूं और दृश्य आ रहा है सैंकड़ों मील दूर का। फिर आंख बन्द करके विचारने लगा कि प्यारे अर्जुनदेव की तो, कई मास हुए, परलोक यात्रा हो ली, वह तो स्वर्गवासी हो चुका, यह दृश्य कैसा ? कुछ आश्चर्य के पश्चात् दिल में ऐसी स्फुरणा हुई कि प्यारा अर्जुनदेव, जो प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा से यज्ञ की इतनी सेवा करता रहा, इसे भी भेंट देनी चाहिये। यही भेंट "यज्ञ-रहस्य" पुस्तक के रूप में दी जाय। फिर सोचा कि यज्ञ-सम्बन्धी पुस्तकें बड़े बड़े विद्वानों ने लिखी हुई हैं। तुम्फ अनपढ़ से ऐसे विद्वत्तापूर्ण विषय पर क्या और कैसे लिखा जायगा ? केवल इसी तरंग को दृष्टि में रखकर कि "हर गुलेरा बूए दीगर अस्त" (अर्थात् हर फूल की गन्ध निराली है) और दूसरे यज्ञ तेरा इष्ट है, तीसरे आज का प्यारे अर्जुनदेव का यज्ञ के सामान को इकट्ठा करना तेरे लिये बतलाता है कि वह तेरी लिखी पुस्तक को अपनी भेंट में लेना चाहता है। सो लिखना आरंभ करता हूं और प्यारे अर्जुनदेव की भेंट करता हूं कि उसकी आत्मा जिस जगह शरीर धारण किये हुए हो, इसे पढ़कर स्वीकार करे।

टेकचन्द (प्रभु आश्रित)

२८-२-३४ बुधवार (व्रत-चौदश-पूर्णमासी)

प्रार्थना

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु । गोभिल गृ० । प्र० खं० ३ । सू० १–३ ।।

हे प्यारे देव ! गुप्त प्रेरक देव ! यज्ञ-स्वरूप यज्ञदेव ! सुख-दाता, प्रकाश-कर्ता, दृश्य-अदृश्य जीवों पर्यन्त सारे संसार में क्रीड़ा करने वाले, चराचर जगत् के उत्पादक, सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त तथा सकल सामग्री के दाता प्रभो ! आओ, कृपा करो । तेरे पैदा किये संसार में तेरी सहनशील धरती माता के ऊपर आज संकट इतना बढ़ रहा है कि हम रहने वाले प्राणी 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' कर रहे हैं । तेरे चमक रहे प्रकाश में भी दुःख के शिकार हो रहे हैं और तेरी दी हुई विश्राम देने वाली रात्रि में भी रो रोकर पुकार रहे हैं । न दिन में चैन है, न रात्रि में आराम । हम में कैसे कैसे तुझ से भयभीत न होने वाले मूढ़, निर्लज्ज, कुटिल, विद्याविरोधी, छली, कपटी, दम्भी, अभिमानी, निर्दयी दुष्ट इस पृथ्वी को कलङ्कित कर रहे हैं । हम सब को सुपथ पर लाने के लिये और अपने दोषों को दूर करने के लिये पुकार करता हूं कि यज्ञ और यज्ञविद्या को उत्पन्न करो और ऐसे यज्ञ करने वाले, सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन भी उत्पन्न करिये । यज्ञ करने वालों के ऐश्वर्य (शारीरिक, आत्मिक) के रक्षक उत्पन्न कीजिये । हे दिव्य-गुण-युक्त प्रभो !

गन
आ
इस
की
हम
तो
हम
ऐस
कर

गन्ध युक्त पृथ्वी और इसके सब पदार्थों के धारण-कर्त्ता स्वामी! आप स्वयं बुद्धि को विमल करने वाले हैं। आप प्रज्ञान-स्वरूप हैं। इसलिये हम दीन यज्ञ करने वालों की बुद्धि भी शुद्ध-पवित्र कीजिये! आप वेद की भगवती कल्याणी वाणी के मालिक हैं, हमारी वाणी को भी पवित्र कीजिये, ताकि जब हम वेद-मन्त्र पढ़ें तो वे शुद्ध, स्पष्ट सुरीले स्वर से युक्त, कोमल एवं मधुर प्रतीत हों। हमारी वाणी के अन्दर ऐसा मिठास भर दो और हमारी वाणी को ऐसा स्वादिष्ट बना दो कि सदा मधुर रस से जीवन को तृप्त करती रहे।

टेकचन्द (प्रभु आश्रित)

प्रस्तावना

यज्ञशक्तिः—

संसार में दो प्रकार की शक्तियां काम करती दिखाई देती हैं। एक तो मिला रही है, जोड़ रही है; दूसरी हटा रही है और तोड़ रही है। एक सुई का काम कर रही है, दूसरी कैंची का। मानव संसार में पहली शक्ति का नाम प्रेम है, दूसरी का घृणा (द्वेष), और वैदिक परिभाषा में प्रेम का नाम 'यज्ञ-शक्ति' है और द्वेष का नाम 'अयज्ञ'।

शक्तियां तो दोनों हर एक मनुष्य में पाई जाती हैं, मगर किसी में पहली अधिक, किसी में दूसरी अधिक है। इन दोनों शक्तियों की मनुष्य को ज़रूरत है और ये दोनों इसकी रक्षा के लिये परमात्म-देव ने उत्पन्न की हैं। मगर मनुष्य इनके वास्तविक रूप को न जानकर अपने जीवन को पशुओं से भी कुत्सित बना रहा है। मनुष्य की सारी की सारी ज़िन्दगी अयज्ञ बन गई है। इस का कारण मनुष्य का स्वार्थ है, अपने असली कर्म यज्ञ को त्याग देना ही है।

इस समय संसार का अनेक प्रकार के संकटों-निर्धनता, बेकारी, अनाथता, विधवापन, रोग, अल्पायु, निर्बलता, दरिद्रता, पराधीनता, चिन्ता, फूट, निर्दयता, कृपणता, कृतघ्नता आदि—में ग्रस्त होना केवल अपने कर्त्तव्य कर्म-नित्यकर्म-पञ्च महायज्ञों के न करने से ही हुआ है।

यजुर्वेद अध्याय १ मंत्र २ में लिखा है:—

ओ३म् वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व माह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत। य० अ० १ मं० २

भावार्थः—मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं उससे पवित्रता का प्रकाश, पृथिवी का राज्य, वायुरूपी प्राण के तुल्य राजनीति, प्रताप, सब की रक्षा, इस लोक और परलोक में सुख की वृद्धि परस्पर कोमलता से वर्त्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं। इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिये विद्या और पुरुषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में कहा है कि "इसलिये आर्यवरशिरोमणि, महाशय, ऋषि-महर्षि, राजे महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।" यज्ञ के कुछ रहस्यों को दर्शाने के लिये यह पुस्तक लिखी जा रही है। अगर जनता में से किसी को लाभ पहुँचा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। इसमें जो त्रुटियां रह गई हों उनके लिये क्षमा मांगता हूं और चाहता हूं कि पाठक-वृन्द कृपा कर के त्रुटियों से सूचित करें। परमात्म-देव करें कि जगदेव के जगत् में जो संसार-दृष्टिगोचर है, या दृष्टिगोचर नहीं है उसमें जो यज्ञ हो रहा है उसकी ज्योति को अनुभव करें, और हवन-यज्ञ के वेद-मन्त्रों की

ज्योति और इस के मिलान को देख सकें तथा इस ज्योति से मन-मन्दिर में प्रकाश कर सकें, जिस से हमारा जीवन-यज्ञ निर्विघ्नता के साथ सम्पूर्ण और सफल हो और हम सुख के भागी बनें।

ओ३म् उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषा वस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥ (ऋ० १।१।७)

कृपानिधे! यज्ञपते! कृपा करो कि तेरे जग के विस्तृत यज्ञ की वेदी पर दिन रात सत्कर्मों की आहुति देते हुए ब्रह्म-बुद्धि के साथ तेरे समीप उपस्थित रहें, और विश्व-प्रेम तथा लोकहित के संकल्पों को पूरा करते हुए नम्र-भाव से तेरी पूजा और आराधना करते रहें जिस से हमारा मनुष्य-जन्म सफल हो और तेरी पूजा का अधिकार सदा बना रहे तथा हम तेरी कृपा के पात्र बन जायं।

इति शम्

यज्ञ रहस्य

प्रथम भाग

पहली झांकी

निर्धन का यज्ञ

पञ्जाब में लायलपुर एक प्रसिद्ध नगर है। उस के दक्षिण में कुछ मील की दूरी पर एक साधु महात्मा बग़ल में आसन लपेटे, कन्धे पर एक कम्बल डाले, गुदड़ी लटकाये और हाथ में एक कमण्डलु लिये चला जा रहा है। सर्दी की ऋतु है। शाम का समय हो गया है। सूर्य नारायण ने अपना प्रकाश दूसरे लोक में कर दिया है। अन्धेरा हो जाने और आबादी का पता न लगने से साधु जी नहर के पास मैदान में पेड़ के नीचे विश्राम करने के लिये अपना डेरा डाल देते हैं। नहर से हाथ मुंह धो कमण्डलु भर वृक्ष के नीचे मृगचर्म बिछा कर अपने ध्यान-भजन में बैठ गये हैं। निवृत्त होने पर पानी पी कर मज़े से आसन पर सो गये। गुदड़ी को अपने सिर का तकिया बना कम्बल ओढ़ नींद करने लगे।

प्रातःकाल हुआ। साधु जी उठे। प्रभु-प्रार्थना करने के पश्चात् जंगल में गये। आवश्यक नित्यकर्मों से निवृत्त हो कर स्नान करके आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ अग्नि होत्र के लिये ज़मीन खोदी। एक छोटा सा कुण्ड ज़मीन में बनाया, लीप कर जंगल से लकड़ियां

और सुगन्धित कतरन (खवी) उखाड़ लाये । प्रार्थना मंत्र उच्चारण करने के पश्चात् प्रार्थना करने लगे:—

हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता! समग्र ऐश्वर्य युक्त! शुद्ध स्वरूप! सब सुखों के दाता परमेश्वर! सकल दुःख हर्ता, विघ्न विनाशक, सर्व सुखों के भण्डार प्रभो! आज संवत् ......, ... मास की ......, ... पक्ष की......तिथि,......वार के इस प्रातःकाल के सुन्दर समय में मैं तेरा अबोध बालक इस यज्ञ की पवित्र वेदी पर तेरे पवित्र चरणों में तेरे वेद के अमृत पवित्र मंत्रों द्वारा इस नित्यकर्म यज्ञ के नाते उपस्थित होता हूं। हे दयानिधे प्रभो ! तेरी दया बे अन्त है! तेरी दया बे अन्त है!! तेरी कृपा महान् है! तेरी कृपा महान् है कि तू हमें नित्य प्रति अपने पवित्र चरणों का वास देकर हमारा उत्थान और कल्याण चाहता है। इस तेरी महान् कृपा के लिये कोटानुकोटि धन्यवाद गाता हुआ तुझे बारम्बार नमस्कार करता हूं और यही वर मांगता हूं कि प्रभो! हमें सदैव तेरी पूजा का अधिकार रहे। अधिकार के साथ हम में सामर्थ्य और स्वतन्त्रता हो। पूर्ण श्रद्धा, अटल और अटूट विश्वास और ऐसी उत्कट इच्छा हो कि चाहे हम देस में हों या परदेस में, दुःख में हों या सुख में, ख़ुशहाली में हों या कङ्गाली में, कोई भी हाल या काल कैसा ही क्यों न हो, हम सदैव तेरा पूजन करते रहें। कभी भी तेरे नाम से विमुख और वंचित न हों। तेरे नाम का दान जो सब से पवित्र और महान् है, वह हमें सदा मिलता रहे। हमारा श्वास श्वास तेरे नाम की माला बन जावे और क्षण क्षण हम तेरी सत्ता का भान करते रहें और तुझे ही एक मात्र जपते, भजते और नमते रहें। इति शम्

इस के बाद हवन करना शुरु कर दिया और समिधा में अग्नि-प्रवेश किया।

पास वाली सड़क के किनारे सादा वेष पहिने, अपने बच्चों को साथ लिये एक गृहस्थी सैर पर जाता हुआ गुज़रा। उसके साथ एक युवक बालक और तीन अल्पवयस्क बालक (५से१२साल की उम्र के) थे। इन में से सब से छोटा बालक यज्ञमित्र अपने एक भाई संतराम से कहता है कि देखो, फ़कीर आग जला रहा है, चलो आग सेकें। तीसरा भाई वियोगीराम-जो १२ साल की उम्र का है-कहता है कि सैर करके वापिसी पर सेकना। पिता जो आगे जारहे है, उन से पहले पूछ लेना चाहिये। बच्चे दौड़ कर पिता जी से जा मिले। कहने लगे एक फ़कीर आग जला रहा है। हम वहां जाकर आग सेकते हैं। हम को सर्दी लगी है। आप सैर करके तब तक वापिस आजावेंगे। सब से बड़ा लड़का (युवावस्था-प्राप्त) सूर्य प्रकाश बोला—नहीं, नहीं, सैर करके हमारे साथ चलना। आजकल के फ़कीरों का कोई विश्वास नहीं। ये लुच्चे लफ़ंगे होते हैं, चरस वग़ैरा पीते हैं। कहीं तुम को न पिला देवें ?

इनका पिता बड़ा समझदार और भक्त-स्वभाव का था। बोला—बेटा! बात तो तुमने कही है, मगर बिना विचारे। क्या पता है कि यही फ़कीर कहीं गुदड़ी का लाल ही हो ? आख़िर सच्चे फ़कीर भी तो इन्हीं में से मिलते हैं। कौन जाने किस भेस में किसी भगवद्भक्त से भेंट हो जाय और हमारा बेड़ा पार हो जाय ?

सूर्य प्रकाश—नहीं पिता जी! मेरा मतलब तो आजकल के फ़कीरों से था। सब तो एक जैसे नहीं होते। इन को टालने के लिये तो ऐसा कहना ही था। और क्या जवाब देता ?

पिता—तुमने इतना कहने में तीन दोष किये। एक तो छोटे बच्चों के अन्तः करण पर यह बिठा दिया कि सब फ़कीर लुच्चे होते हैं। इन में ऐसा संस्कार बैठ जायगा कि वे किसी साधु को भी अच्छा नहीं समझेंगे, न साधु-सेवा करेंगे न कोई जीवन लाभ उठायेंगे। दूसरे, यथार्थ समझने की योग्यता न रखने से एक अपरिचित पर व्यर्थ का दोष मढ़ दिया। तीसरा दख़ल दर माक़ूलात अर्थात् अनधिकार चेष्टा। जब इन्हों ने मुझ से पूछा था तो मेरे जवाब देने तक की इन्तज़ार तो कर लेते ? बेशक तुम बड़े हो, उन के पिता समान हो, न कि पिता। वह भी मेरी अनुपस्थिति में। मेरी उपस्थिति में तुम को भी इन्हें भाई का दर्जा देना चाहिये।

सूर्य प्रकाश—पिता जी ! क्षमा कीजिये। नाराज़ न हूजिये। मैं वापिसी पर आप को इस फ़कीर की करतूत दिखा दूंगा। मैंने किसी फ़कीर को जब भी देखा, ऐसा ही पाया जैसा मैंने वर्णन किया है।

पिता—मैं तो फिर भी यही कहूंगा "हरकिरा जामा पारस बीनी, पारसा दान व नेक मर्द अंगार" अर्थात् जिस किसी को तू साधु के वेष में देखे, उसे साधु जान और भला आदमी समझो हां, जब तुझे दोष मालूम हो जाय, उसे त्याग दे। अवगुण जाने बिना किसी के सम्बन्ध में जैसे तुमने कहा, ठीक नहीं किया।

सैर करके वापिसी पर ये अभी इस साधु के स्थान से कुछ दूर ही थे कि सुगन्ध आने लगी। वियोगीराम बोला—"पिता जी ! यह तो सुगन्ध आ रही है।" "हां, हमें भी आरही है," बाकी बच्चों ने कहा। ऐसी बातें करते करते साधु के पास पहुंच गये। वह तो वेदमन्त्र बड़े मीठे स्वर से उच्चारण कर रहा है। 'स्वाहा' पर वह

कभी समिधा और कभी कतरनकी जड़ डाल देता है। ये सब जाकर बड़ी श्रद्धा से बैठ गये। जब साधु ने अपना हवन-यज्ञ समाप्त किया और प्रार्थना प्रारंभ की, ये भी आंख मूंद सुनने लगेः—

प्रार्थना—

१. ॐ श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां विद्यां पुष्टिं श्रियं बलम्।
तेज आयुष्यमारोग्यं देहि मे हव्यवाहन॥

२. ॐ अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
निर्धनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्॥

३. ॐ काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभ रहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥

४. ॐ सर्वेपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

---

(१) हे हृदय दर्पण! मुझे श्रद्धा, मेधा (धारणावती बुद्धि), यश, प्रज्ञा (दानाई), विद्या, पुष्टि, श्री, (सब प्रकार की शोभा) बल, तेज, आयु और आरोग्यता प्रदान करो।

(२) हे हमारे ईश्वर! हमारे देश में जो पुत्र रहित हैं, वह पुत्रों वाले हों और पुत्रों वाले पोत्रों वाले हों। निर्धन धनवान् हों और सौ वर्ष तक जीवें।

(३) समय पर मेघ बरसे और पृथिवी खेतियों से भरपूर हो। यह देश क्षोभ से रहित हो (हमारे देश में कभी बेचैनी न हो) और ब्राह्मण निर्भय हों।

(४) सब ही सुखी हों। सब ही नीरोग हों। सब कल्याण और भद्र देखें। मत कोई दुःख को प्राप्त हो।

५. ओ३म् दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्तति रेवच ।
श्रद्धा च नो मा वयगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥
६. ओ३म् अन्नंच नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मास्म याचिष्म कञ्चन ॥

हे नाथ, सर्वाधार, सर्वोपरि, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप, निराकार, निर्भय, अनूप, अजर, अमर, सृष्टि का कर्त्ता, दयालु, कृपालु, प्रतिपालक मेरे प्रभो! धन्य हो, हे दयामय! यह सब कुछ तेरी ही दया से हुआ है, तेरी ही कृपा से हुआ है। इस में मेरा कुछ भी नहीं, तुच्छ भी नहीं। मैं स्वयं कुछ भी नहीं, तुच्छ भी नहीं। यह सब तेरे अर्पण है, तेरे अर्पण है। मुझे सदैव काल इस शुभ मार्ग के ऊपर लगाये रक्खो। मैं तेरी हरेक वस्तु को तेरी देन समझूं और तेरी देन को तेरे अर्पण करने में कभी सङ्कोच न करूं। हे प्रभो! तू उदार है, मेरी आत्मा को उदार बनाओ। मुझ गरीब निराश्रय के आप ही आश्रय हो, मुझ निमाने (मानहीन) के आप मान हो, मुझ निताने (तान हीन) की आप ही तान हो, मुझ नियौटे (ओट-हीन) की आप ही ओट हो। मुझ निरावलम्ब के आपही अवलम्ब हो। मुझ निर्धन के धन आप हो। मैं अनपढ़ हूं, आपके नाम रूपी

(५) हम में दाता बढ़ें, वेद बढ़ें और हमारी सन्तान बढ़े। श्रद्धा हम में से कभी दूर न हो और देने के लिये बहुत कुछ हमारे पास हो।

(६) हमारे घरों में बहुत अन्न हो और हम अतिथियों को ढूंढते फिरें। हमारे पास से याचना करने वाले हों और हम किसी से याचना न करें।

धन को चाहता हूं। मुझे भरपूर करो।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव-देव!

आप ही मेरे सब कुछ हो। आश्रयदाता हो, पतित-पावन हो, विश्वम्भर हो, रक्षक हो, सर्वरक्षक हो, सेवकों के तुम गुप्त रक्षक हो। व्रतपति हो, भक्त वत्सल हो। मैं ग़रीब असमर्थ तेरी शरणागत हूं। खरा हूं तो तेरा, खोटा हूं तो तेरा। असली हूं तो तेरा, नक़ली हूं तो तेरा। खरा हूं तो स्वीकार करो। खोटा हूं तो खरा बनाकर स्वीकार करो। स्वीकार करो, ज़रूर स्वीकार करो। असली हूं तो स्वीकार करो, नकली हूं तो असली बनाकर स्वीकार करो। परन्तु पिता! अवश्यमेव स्वीकार करो। मेरा बेड़ा पार करो। मेरा उद्धार और संवार करो। मेरा आप पर कोई ज़ोर नहीं। कोई मेरा पुण्य नहीं, प्रताप नहीं, कोई दान नहीं, कोई अधिकार नहीं। केवल तेरा तर्स! तेरा तर्स!! तेरी दया! तेरी दया!! मैं मांगता हूं पिता! तुझ से तेरी कृपा, तेरी कृपा। मैं छोड़ता हू अपने आपको तेरी दया के ऊपर। तेरी दया! तेरी दया!! तेरी दया!!! मेरे जीवन को आदर्श जीवन बनाओ, निष्कलंक जीवन बनाओ। पाप कमज़ोरियों से रहित करो। कुचेष्टा, कुसंस्कार दूर करें। दुर्वासनाओं को दग्ध करो। अपने नाम का ध्यान दो, अपनी भक्ति का दान दो, अपनी पूजा का अधिकार दो। अपनी जन-सेवा का अधिकार दो। मुझे संसार के हर प्रकार के ऋण से उऋण करो। मुझे सद्बुद्धि और सुमति प्रदान करो जिससे मैं शुद्ध अन्तःकरण से कह सकूं—तेरी इच्छा पूर्ण हो! तेरी इच्छा पूर्ण हो!! मैं अपने आपको तेरी इच्छा के आधीन कर दूं। मेरी इच्छा इच्छा न रहे। तेरी दिव्य इच्छा को बरतूं। अपनी इच्छा को इच्छा

न समझूं। तू ही मेरा सच्चा गुरु और आचार्य है 'जो तुद भावे सोई भलीकार, तू सदा सलामत निरंकार'। मुझे तेरी कृपा दरकार।

मैं तेरी इच्छा को ही तेरी कृपा समझूं। मुझे अपना साक्षात कराओ। प्रभो! अपना साक्षात् कराओ। लाज रक्खो और मिन्नत लगाओ। मुझे अपना साक्षात् कराओ (कुछ मिनट चुप-प्रभु-ज्योति का ध्यान)

मुझ गरीब निराश्रय से तूने अपने आश्रय के ऊपर, मुझ निर्बल से तूने अपने बल के ऊपर जन्म से अद्यपर्यन्त (आज तक) पथ प्रदर्शन करके नाना प्रकार की प्रतिज्ञायें ली हैं। मैं असमर्थ हूं, तेरी चरण-शरण में आता हूं, शीश झुकाता हूं (शीश झुकाया)। तू व्रतपति है, मैं अपूर्ण हूं। तू परिपूर्ण है, मेरे व्रतों की रक्षा करो। मेरी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करो। मुझे अपना पूर्ण विश्वास दो—अटल विश्वास दो। मेरी आत्मा को पूर्ण संतुष्टि दो। मैं तुझे जानूं, तुझे मानूं। तुझ से मांगूं, तुझ से पाऊं। तेरे सिवाय किसी और को अपना उपास्य देव न ठहराऊं। जब जब भी मेरी शुभ कामना हो, तुझ से ही पूर्ण कराऊं। किसी और के आगे हाथ न फैलाऊं। एक मात्र तुझे ही अपना आश्रय बनाऊं—**ओं भूर्भुवः स्वः प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥**

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम।

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! मेरे मन, मेरी वाणी और मेरे कर्म के अन्दर एकता प्रदान करो,! एकता प्रदान करो,!! एकता प्रदान करो!!!

ओं तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं-मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहोमयि धेहि ।

(हर एक पद से शीश से हाथ लगा अग्नि से तपा कर मुंह पर लगाया ।)

ओं असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ, अन्धकार से अपने प्रकाश में पहुंचाओ । मुझे मृत्यु के दुःख संताप से बचाओ और अपनीअमृत गोद में बिठाओ ! मुझे मृत्यु के दुःखसंताप से बचाओ और अपनी अमृतगोद में बिठाओ !! मुझे मृत्यु के दुःखसंताप से बचाओ और अपनी अमृत गोद में बिठाओ !!! नाथ ! यही एक याचना है, स्वीकार करो और हमारा बेड़ा पार करो । इति शम् ।
इतनी प्रार्थना के बाद आंख खोली और ताली बजा बजा कर भजन गाने लग गये ।

भजन

हे जगत् स्वामी ! प्रभु जी ! भेंट धरूं क्या मैं तेरी ?
माल नहीं मेरे संपत नाहीं, जिसको कहूं मैं मेरी ।
इस जग में हम ऐसे बिचरें, जोगी करे ज्यों फेरी ॥१॥ हे जगत् स्वा०
धन जन जोबन अपना माने, मूर्ख भूला भारी ।
तुझ बिन और सहाई न मेरा, देख लिया मैं विचारी ॥२॥ ,, ,,
यह तन यह मन होवे न अपना, है सब माल तुम्हारा ।
जब चाहें तब ही ले लेवें, नहीं कुछ ज़ोर हमारा ॥३॥ ,, ,,

तुम्हरे ही दर का मैं कूकर स्वामी, लाज तुम्हें है मेरी।
चरण शरण निज अर्पण करके, देवो भक्ति बिनदेरी ॥४॥ " "
हे जगत् स्वामी ! प्रभु जी! भेंट धरूं क्या मैं तेरी ?

साधुने अपना कार्य समाप्त किया। ये सब के सब बच्चे और इनके पिता बात करने के लिये उत्सुक थे। यज्ञमित्र बोल उठा-महात्मा जी ! आप ने तो बहुत देर लगा दी है। हमारे घर में तो इतनी देर नहीं लगती।

महात्मा—तुम अभी बच्चे हो। जब बड़े होगे तो तुम इस से भी ज़्यादह देर लगाया करोगे।

सतराम—घी तो था नहीं। आपने सिर्फ़ पानी से हाथ लगा लगा कर और अग्नि पर तपा कर मुंह पर क्यों लगाया ? हम तो घी से लगाया करते हैं।

महात्मा— तुम साहुकार ठहरे। हम ग़रीब हुए। तुम्हारा घी और हमारा पानी।

वियोगी राम—महात्मा जी ! आप का भजन मुझे बहुत भाया है। क्या आप मुझे लिखा देंगे ?

सूर्य प्रकाश—महात्मा जी ! आपने सतराम की बात का जवाब नहीं दिया है। मज़ाक में टाल दिया है। नाम मात्र की कार्यवाही अच्छी नहीं। यह लोगों को धोखा देना है। न सामग्री आप के पास है, न घी। ऐसा लकड़ियों से हवन कर लेना कोई हवन नहीं कहलाता और अगर सामर्थ्य नहीं है तो व्यर्थ ऐसा करने की क्या ज़रूरत ? मैं तो वैसे भी ज़रूरत नहीं समझता। धन-संपत्ति और समय को नष्ट करना है।

पिता—[हाथ जोड़कर] महाराज ! क्षमा करेंगे। आपका

बहुमूल्य समय बचे नष्ट कर रहे हैं। आप कृपा करके इस सेवक के गृह पर चलें। वहां रहें, हम भी लाभ उठावेंगे। आप जंगल में कष्ट न उठावें। यहां न भोजन आ सकेगा, न आराम रहेगा।

महात्मा—आप तो कोई भक्त मालूम होते हैं। आप में श्रद्धा है। ईश्वर आप को अधिक बल और श्रद्धा प्रदान करें। कोई समय नष्ट नहीं हुआ। हर एक प्राणी अपनी प्रकृति के अनुकूल बोलता, खाता-पीता और चलता है। भोजन और आराम अदृष्ट-भोग है।

भक्त—श्रीमान् जी ! क्या आप संन्यासी हैं ?

महात्मा—नहीं, संन्यासी अग्निका हवन नहीं करते। इससे ऊपर होते हैं।

भक्त—तो क्या आप गृहस्थी हैं ?

महात्मा—नहीं, बीच का मेल। मध्यम दर्जा।

भक्त—अच्छा, आप वानप्रस्थी हैं। विनय है—आप कृपा कर के हमारे गृह को चलकर पवित्र करें। थोड़ी दूरी पर है। आप की कृपा से हम को और दूसरे लोगों को भी लाभ हो सकेगा।

महात्मा—अच्छा, अब आप जायें। हम अब तो इस जंगल में नदी की मौज-बहार लेते हैं। शाम को देखा जायगा, जैसा भाग्य होगा।

वे सब नमस्ते कह कर चल दिये। रास्ते में भक्त जी ने प्रकाश को समझाया। वह समझने में ही न आया। तर्क वितर्क करता गया। घर पहुंच गये। जब भोजन तैयार हो गया तो भक्त जी ने दिल में ख्याल किया कि सूर्यप्रकाश को भोजन देकर महात्मा जी के

पास भेजूं। संभव है अकेला होकर उनसे अपने संशय मिटा सके। (उधर महात्मा जी इनके चले जाने के बाद फिर हाथ मुंह धो आचमन करके प्रभु से प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभो! इस नये ज़माने में नई रोशनी ने भारत के नौनिहालों के दिलों के ऊपर पत्थर की शिला रख दी है। इसे उठा। इनको सन्मार्ग पर लगा। यही भारत माता के सच्चे सुपुत्र जब तक न बनेंगे तो हम कैसे ज़िन्दा रहेंगे? प्रभो! इनको अपने यज्ञरूप का दर्शन कराओ। इनके जीवन को यज्ञमय बनाओ)।

भक्त—बेटा प्रकाश! क्या तुम महात्मा को भोजन दे आओगे और खिला आओगे?

सूर्य प्रकाश—जैसी आज्ञा हो।

भक्त—तुम्हें आपत्ति तो नहीं?

सूर्य प्रकाश—मैं जाकर उनसे बहस तो करूंगा। आप को इस में कोई आपत्ति तो नहीं?

भक्त—(दिल में, काम बन गया) बस इतना ख़्याल रखना कि उनका निरादर न हो और तुम सच्ची भावना से अपने ज्ञान की वृद्धि के लिये वार्तालाप करो। अपने जय-पराजय का ख़्याल न रखना, न ही अपने ज्ञान की डींग मारना।

सूर्यप्रकाश भोजन को उठा थोड़ी देर में महात्मा जी के पास पहुंच गया। नमस्ते कहकर भोजन आगे रख दिया। महात्मा ने बड़े प्रेम से भोजन खाया और आशीर्वाद दी।

सूर्य प्रकाश—क्या मैं आप से कोई वार्तालाप कर सकता हूं?

महात्मा—बड़े शौक से।

सूर्य प्रकाश—एक मामूली से हवन यज्ञ का प्रकृति के यज्ञ के मुकाबिले में क्या असर है ?

महात्मा—यज्ञों का असर इस प्रकृति पर क्या होता है और आत्मा पर क्या होता है ? यज्ञ का अंग अंग किस तरह पर ब्रह्माण्ड के अङ्ग अङ्ग की निशानी है ? इत्यादि भेद जो यज्ञविद्या के साथ सम्बन्ध रखते हैं—जब ये खुल जायंगे, आप के सारे संदेह निवृत्त हो जायंगे। और तो कठिनाइयां बहुत कुछ दूर हो सकेंगी पर यह सफलता भी बड़े निपुण विद्वानों को बड़े परिश्रम के साथ प्राप्त होगी।

बाह्य लाभ और आन्तरिक लाभः—

सूर्य प्रकाश—यज्ञ-विद्या को जो न जानता हो उसके लिये तो फिर व्यर्थ है।

महात्मा—ऐसा नहीं। हर एक चीज़ के दो पहलू होते हैं—"बाह्य और आन्तरिक"। जैसे तुम्हारे बाहर शरीर है और अन्दर आत्मा है, मन है। बाहर का असर तो तुरन्त होता है चाहे ज्ञान से करे या अज्ञान से, मगर आन्तरिक लाभ बिना ज्ञान के नहीं होता। ज्ञान के लिये मनुष्य में दो चीज़ें चाहियें—एक तो श्रद्धा-जिज्ञासा, दूसरी उतनी बुद्धि।

सूर्य प्रकाश—मुझे आप की दोनों चीज़ों का पता नहीं। आप ही कह दें। बुद्धि से आप का क्या मतलब है ?

महात्मा—जितना पात्र होता है और जैसा पात्र होता है उस में वैसी ही चीज़ और उतनी ही समा सकती है। अब तुम

स्वयं अनुमान करो कि तुम्हारा जो छोटा भाई था अगर उसे विज्ञान की कोई बात बतलाई जावे, क्या वह समझ सकेगा ?

सूर्य प्रकाश—नहीं, बिलकुल नहीं। तो क्या यज्ञ-विद्या विज्ञान से सम्बन्ध रखती है ?

महात्मा—हां, यह विद्या विज्ञान से क्या, बल्कि दर्शन-शास्त्र से, न्याय से, गणित से, ज्योतिष से और वैद्यक से भी सम्बन्ध रखती है।

सूर्य प्रकाश—तब तो मेरे जानने के योग्य और आवश्यक हुई।

महात्मा—क्यों कर ? तुम तो अभी बच्चे हो।

सूर्य प्रकाश—महाराज ! मैं ईश्वर की कृपा से बी. ऐस. सी. हूं। ऐम. ए. में पढ़ता हूं। यद्यपि स्वयं तो भक्त नहीं हूं पर भक्तों की सन्तान हूं। श्री पिता जी की शिक्षा और आज्ञा के अनुसार उनके प्रताप से मैं अभी तक तो सादा रहता हूं। इसलिये जैसे मैंने आप के वेष से आप को ऐरा ग़ैरा साधु जानकर भूल की ऐसे आप को भी मेरे पहिरावे और चाल-ढाल से धोखा हुआ।

महात्मा—तब तो फिर ये बातें तुम्हारे प्रश्न करने पर तुम्हारे पिता जी को भी पसंद आयेंगी। पढ़े लिखे आदमियों को तो ज़्यादह लाभ हो सकता है। आप सब को इकट्ठे लाभ लेना चाहिये।

सूर्य प्रकाश—बहुत अच्छा, महाराज ! हम शाम को आवेंगे। क्या आप समय प्रदान करने की कृपा करेंगे ?

महात्मा—मेरे सिर आंखों पर आइये। जो कुछ मैं जानता हूं और जितना जानता हूं, जब पूछोगे, बता दूंगा।

दूसरी झांकी

जग यज्ञ है और यज्ञ मुक्ति का साधन

शाम क्या आई? अन्धेरे में प्रकाश का शीतल और शान्त कर देने वाला दीपक लाई। अश्रद्धालुओं में श्रद्धा और बे-लगामों की लगाम बन कर आई। महात्मा उसी प्रकार सायंकाल का हवन कर रहे हैं और प्रेमी जन आ पधारे। सुबह के इच्छुक और कुछ नये सज्जन भी आगये। हवन-सन्ध्या और प्रार्थना की समाप्ति पर लोगों को सम्बोधित करके कहा कि भद्र पुरुषो! मनुष्य तो जन्म से ही कई ऋणों से बंधा हुआ है। परमात्म-देव ने उसे ऋणों से मुक्त होने के लिये मनुष्य का शरीर दिया है। बाकी जितने शरीरधारी जीव हैं वे असहाय हैं। सब के शरीरों की रचना टेढ़ी है। एक मनुष्य ही है जिसको सीधा बनाया है। दूसरा वृक्ष है जो सीधा तो है किन्तु इसका सिर नीचे गढ़ा है। मनुष्य का सिर ऊपर है। सिर वह स्थान है जिसमें बुद्धि रहती है।

बन्धन से मुक्त होने का साधन—

प्रभु की कृपा का पात्र मनुष्य ही है जो अपनी बुद्धि से प्रभु की आज्ञा के अनुकूल व्यवहार करके अपने ऋण से उऋण

हो सकता है। ऋण एक ऐसा रोग है जो मनुष्यको सुखा देता है। लोकोक्ति है—'लोके हि निर्धनो दुःखी, ऋण ग्रस्तोऽधिको दुःखी' संसार में निर्धन दुःखी होता है किन्तु उससे भी अधिक दुःखी वह है जिस पर ऋण है।

मामूली आदमी का ऋण साधारण तरीके से प्राप्त होता है। प्रबल साहूकार का ऋण मनुष्य का घर बार कुर्क़-नीलाम करा देता है। घर से बेघर बेदर कर देता है। सरकार का ऋण अति दुःखदायी होता है। किन्तु प्रभु और प्रभुके देवताओं का ऋण सब कुछ नष्ट कर देता है, अगर न उतारा जाय।

तीन लोक, तीन यज्ञ, तीन शरीर और तीन ऋणः—

मनुष्य ने संसार के तीनों लोकों को भोगने के लिये जो तीन शरीर पाये हैं, इन्हीं के कारण वह तीन प्रकार से ऋणी है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, देवलोक-इन में जो कुछ भी है वह सब मनुष्य के लिये है।

पृथ्वी की पैदावार या यूं समझो कि पृथ्वी के पुत्रों या इसकी संतान से ही अपना शरीर बनाया और इस का पालन-पोषण करता है और शरीर से धन-माल, संपत्ति, यश आदि इकट्ठा करता है। इसे पितृऋण कहते हैं। यह कर्ज़ तब उतरेगा जब वह स्थूल शरीर से भूलोक पर रहने वाले प्राणियों को सुख पहुंचायेगा या उन को सुख पहुंचाने के लिये श्रेष्ठ संतान पैदा करके उनके अर्पण कर जायगा। इसके लिये आधिभौतिक यज्ञ चाहिये।

दूसरा लोक है अन्तरिक्ष। इस लोक में सब देवताओं का वास । वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि-इनका सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है। मन, अन्तःकरण प्राण आदि की इन्हीं के

द्वारा स्थिरता है। मनुष्यों को जगत् की प्राकृतिक (अग्नि आदि) शक्तियों से तथा साथी मनुष्यों की निःस्वार्थ सेवाओं से जो सुख लगातार मिल रहा है, देव-ऋण कहलाता है। इसके ऋण को उतारने के लिये, इन यज्ञ-चक्रों को जारी रखने के निमित्त से आधिदैविक यज्ञ-कर्म करना भी आवश्यक है, इसे देवपूजा कहते हैं।

तीसरालोक देवलोक है। यह ज्ञान का लोक है। इस से मनुष्य को ज्ञान, आनन्द आदि परम लाभ हो रहा है। इस का नाम ऋषि-ऋण है और कारण शरीर से सम्बन्ध रखता है। इस की भी सन्तति जारी रखने के लिये स्वयं विद्या का स्वाध्याय और उपदेश कर या पढ़ा करके उससे उऋण होना चाहिये। इसके लिये आध्यात्मिक यज्ञ करने चाहियें।

उऋण होना ही मुक्त होना है!--

मनुष्य तो सर्वदा ऋणों से लदा हुआ है। जो जीव इस त्रिविध शरीर को पा कर भी अपने को ऋण-बद्ध नहीं अनुभव करता, वह महा अज्ञानी है। इसलिये हम अपनी सब शक्ति और सब यत्न इन ऋणों के उतारने में ही व्यय करते हुए जीवन बितावें।

भक्त—हम तो समझते हैं कि प्रभु ने जब जीव को शरीर दिया इसके भोग के लिये भी ख़ुद ही प्रबन्ध करना था। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और संसार के सब खाद्य पदार्थ शरीर के धारण के लिये बनाये। जब यह उसका अपना प्रबंध है तो हम पर ऋण क्यों? माता पुत्र को पैदा करती है। इसका पालन-पोषण भी इसके लिये अनिवार्य हो जाता है। इसलिये हमारे पैदा होने से पूर्व प्रभु इसका भोग माता के स्तन में संचय कर देता है।

महात्मा—"ऋण" शब्द का अर्थ है "फिर दूंगा, ऐसे मान कर ग्रहण किया धन।"

भक्त—कोई मनुष्य का बच्चा माता का दूध ऐसा मान कर ग्रहण नहीं करता कि वापिस दूंगा, न ही उसे समझ होती है। कोई आदमी हवा, पानी, प्रकाश यह भावना करके नहीं लेता कि मुझे कुछ देना होगा। न ही माता-पिता से अन्न, वस्त्र, पैसे इस भाव को रख कर लेता है कि वापिस कर दूंगा। हां, संसार के व्यवहार में तो जो किसी से उधार मांग कर लेता है तो उसे दिल से यह निश्चय होता है कि मैंने देना है, न दूंगा तो वह ज़बर्दस्ती वसूल कर लेगा। हमारी समझ में तो यह बात आप की नहीं बैठती।

महात्मा—सुनो! ऋण दो प्रकार का होता है। एक वह जो मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को स्वयं अनुभव करके अपने पास न होने के कारण दूसरे से मांगता है, हाथ फैलाता है (नैमित्तिक ऋण)। दूसरा ऋण वह है जो स्वाभाविक है! स्वभाव सिद्ध जन्म के साथ साथ बन्धा हुआ है बल्कि उसने शरीर को बांधा हुआ है। जब तक जीव जन्म लेता है उसी ऋण के आधीन जन्म लेता है। जब उऋण हो जाता है तब जन्म भी उसका पीछा छोड़ देता है।

हमारा जीवन है कि अर्धमरण? :—

ऋण का नाम अर्धमरण है। मनुष्य जीवित तब कहलाता है जब मरण से रहित हो जाय—अमर हो जाय। यह जीना इस का अर्धमरण के बराबर है। यह विषय सूक्ष्म है। ज़रा गहरी

नज़र से देखने और विचारने का काम है । मैंने पहले कहा है कि जो अपने आप को तीन प्रकार का शरीर पाकर भी ऋण-बद्ध नहीं अनुभव करता वह महा अज्ञानी है । यह विषय अनुभव करने का है। केवल सुनने सुनाने का काम नहीं। ज़रा विचारो तो सही-अगर बच्चे को दूध न मिले तो क्या करेगा ?

यज्ञ मित्र--वह चिल्लायेगा, रोवेगा।

महात्मा--क्यों ? इस लिये कि मां उसे दूध देवे। यही चिल्लाना उस का मांगना है । अगर मां रोने चिल्लाने पर भी न देवे तो बच्चा चीख़ चीख़ कर मर जायगा। जो जिस को धारण करता है, जीवित रखता है वह उपकारक कहलाता है । और जिस चीज़ से जीवित रखता है वह चीज़ धन कहलाती है और इस लेने और देने का नाम निःस्वार्थ ऋण (क़र्ज़ हसना) कहलाता है। निःस्वार्थ ऋण वह प्रसाद (बरकत) है जो आवश्यकता वाले को उस की आवश्यकता की पूर्ति के लिये लाभ या व्याज की इच्छा के विना मित्र, बच्चे या सहायक के रूप में दिया जाता है । पर इस का यह मतलब नहीं होता कि वह मूल धन को भी निगल जाय। ऐसा निगलने वाला कृतघ्न कहलाता है । ऋण को चुकाना ही कृतघ्नता के दोष से मुक्त होना है।

बच्चा छोटा है, असमर्थ है। अब वह बढ़ने लगा । किन चीज़ों से बढ़ा ? अन्न, जल, वायु, पृथ्वी की पैदावार खा कर, उसे अग्नि पर पका कर। अब बढ़ कर शरीर से कमाने लगा। सूर्य की रोशनी में महल बनाया, आराम के लिये। घोड़ा-गाड़ी, नौकर-चाकर रक्खे, अपने सुख के लिये । किन्तु उसके आराम और सुख का हेतु उस की कमाई और कमाई का साधन शरीर और

शरीर को बढ़ाने वाले प्राकृतिक देव ही हैं । वे उस के उपकारक हुए । अपने उपकारकों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना उन का ऋण उतारना है और उपेक्षा करना कृतघ्न बनना और ऋणी होना है । जनता के लिये कुछ आत्म-बलिदान किया, अच्छी सन्तान पैदा कर दी तो पिता का ऋण चुक गया । वायु-जल शुद्ध कर दिये तो देव-ऋण चुक गया । किसी को पढ़ा दिया या उपदेश कर दिया तो ऋषि-ऋण चुक गया । इसी का नाम यज्ञ-चक्र है ।

यज्ञ की परिभाषा :—

सूर्य प्रकाश—इस का नाम यज्ञ कैसे हो गया ?

महात्मा—मनुष्य का शरीर कर्म करने और भोग भोगने के लिये बना है । बिना कर्म किये और भोग भोगे यह रह नहीं सकता । इस लिये जिस कर्म से ब्रह्माण्ड की रक्षा वा स्थिति हो और सृष्टि-क्रम जारी रहे अथवा जो भोग केवल इसी प्रयोजन से किया जाय कि जिस के द्वारा शरीर ऐसा कर्म कर सके जो कर्म ब्रह्माण्ड की रक्षा वा स्थिति के निमित्त और सृष्टि-क्रम के जारी रखने के लिये हो, वह यज्ञ है ।

उदाहरणार्थ—तुम को तुम्हारे माता-पिता ने पैदा किया और उन को उन के माता पिता ने । अब तुम भी अगर पुत्र पैदा करोगे तो तुम्हारे कुल की स्थिति और वृद्धि जारी रहेगी । तुम्हारा वंश ब्रह्मांड का एक अंश है ।

वायु जल ने तुम्हारे शरीर को पवित्र किया । तुम्हारा स्वास्थ्य बना रहा । तुम ने भी सुगन्धित पदार्थों से वायु में सुगन्धि फैला दी । वह दूसरों के लिये स्वास्थ्य-सम्पादन करने वाली बनी ।

सृष्टि-क्रम जारी रहा। तुम ने किसी गुरु से पढ़ा या उपदेश लिया, तुम्हें यथार्थ मार्ग मिल गया।

तुम्हारे गुरु ने किसी से पढ़ा था। अब तुम भी औरों को पढ़ा दोगे तो परम्परा जारी रही। कर्त्तव्य का पालन भी यज्ञ कहलाता है।

प्रकाश—सन्तान को पैदा करना और बढ़ाना तो निःसंदेह परम्परा को क़ायम रखना है परन्तु वायु-जल की समझ नहीं आई। वह तो प्राकृतिक शासन के आधीन है। प्रभु स्वयमेव सृष्टि के आदि से अन्त तक इसे क़ायम रखते हैं। मनुष्य का क्या काम?

महात्मा—रेलगाड़ी में तुम बैठे हो। वह कमरा साफ़ था जिसे रेलवे के कर्मचारियों ने किया। अब यात्री बैठे हुए थूक बलग़म डाल रहे हैं। सिगरेट पी पी हवा ख़राब कर रहे हैं। गन्ना चूस चूस कर छिलका वहां अन्दर डाल रहे हैं। कमरा ख़राब हो गया, मलिन हो गया। बैठने वालों को अथवा नये यात्रियों को, दूसरे स्टेशन से चढ़ने वालों को कैसी घृणा और अरुचि होती है। इसकी ज़िम्मेवार सरकार तो नहीं। लोगों ने आप ख़राब किया जिस से दूसरे भाइयों को कष्ट पहुंचा। किसी को कष्ट पहुंचाना पाप (अयज्ञ) और सुख पहुंचाना धर्म (यज्ञ) है। यदि वे आदमी थूक बलग़म खिड़की से बाहर फेंकते, सिगरेट न पीते, थोड़े वक़्त के लिए जितनी उनकी यात्रा थी (थी तो सीमित और निश्चित) संयम कर लेते और गन्ना चूसने वाले गन्ना भी चूसते किन्तु बुद्धिमत्ता से छील बाहर फेंकते जाते, बेपर्वाही न करते तो यह कार्य उनका रेलवे वालों के साथ सहायता करने का था।

ऐसे ही प्रभु-देव का सूर्य प्रकाश कर रहा है। जल निर्मल

बह रहा है। पवन शुद्ध चल रही है, मेरे और सब दूसरे प्राणियों के उपकार के लिये। परन्तु सुबह उठते ही मैंने थूक-बलग़म पृथ्वी पर डाला। मल-मूत्र का विसर्जन किया। इस की दुर्गन्धि से मैं तो अपनी नाक भी बन्द कर लेता हूं पर अन्तरिक्ष की वायु में फैल जाने से दूसरे प्राणियों का ख़्याल ही नहीं करता कि इन को भी दुर्गन्ध आयेगी या उन पर असर होगा कि नहीं। निर्मल जलसे हाथ-पानी (शौच) करता, कुल्ला-दातुन कर के जल को अपवित्र, अशुद्ध, मैला बनाता हूं। मुझे स्वयं तो अपने निकाले कफ़ से घृणा आरही है, क्या दूसरों को न आयेगी? मतलब यह कि मनुष्य जितना मैल, गन्द, मूत्र, व मल शरीर से बाहर निकाल कर पृथ्वी अथवा अन्तरिक्ष की वायु को ख़राब करने का कारण बनता है उतना ही उसको सुगन्ध द्वारा प्रतिकार के तौर पर शुद्ध कर देना आवश्यक है। प्रभु की चीज़ तो शुद्ध है। मगर हमारे कुत्सित कर्म से वह मलिन हो कर दूसरे प्राणियों का अहित करती है। इस लिये पाप का भागी बन जाता है।

मेरे जीवन-यज्ञ का भरण-पोषण करने वाली ये सब दिव्य शक्तियां है, इसलिये मुझे सचेत और सावधान रहना चाहिये कि कहीं यह विश्वकर्मा का विस्तृत किया हुआ पवित्र यज्ञ मेरे किसी कर्म से कभी भ्रष्ट न हो जाय। बल्कि मेरे सब काम प्रभु के चलाये नियम के अनुकूल होकर प्राणी मात्र के लिये सुखदायक हों। यद्यपि आपके प्रातःकाल के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया गया, समय बहुत हो गया, इसलिये फिर आपको बतायेंगे।

भक्त—कृपा कर के आप हमारे निकट चल कर रहें। वहां प्रातः व सायं हम यज्ञ के विषय में अपनी शंकायें मिटा सकेंगे।

प्रकाश—कृपा करके मुझे वैज्ञानिक ढंग से मनवाइए।

महात्मा—सर्व साधारण जनता को साधारण रीति से उपदेश देना, समझाना उचित होता है। विज्ञान की बातें उन को शुष्क प्रतीत होंगी। हां, जब सिर्फ़ आप लोग विज्ञान के समझने वाले उपस्थित होंगे तो आप को वैसे बतलाऊंगा।

सबने ऐसा स्वीकार किया और इनको अपने साथ गांव में ले गये। वहां इन को एकान्त स्थान दे दिया और भक्त ने प्रार्थना की कि कल प्रातः का यज्ञ उनके गृह पर किया जाय और वहां ही उपदेश हो। महात्मा ने 'हरि इच्छा' कह कर सब को विदा किया।

तीसरी झांकी

यज्ञ का स्वरूप—

आज प्रातःकाल के लिये भक्त जी ने अपने गृह को शुद्ध पवित्र बना यज्ञ की वेदी लगा दी। यज्ञपात्र व घृत सामग्री, समिधा एकत्र कर, उत्तम उत्तम आसन बिछा, आए सज्जनों-स्त्री पुरुषों-का यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक स्थान बनाया। वियोगीराम महात्मा जी को बुला लाया। फिर भक्त जी ने आज्ञा मांगी कि कैसे बैठें? महात्मा जी ने कहा कि भक्त जी और इनकी धर्मपत्नी पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख होकर बैठें और ख़ुद इनके सामने पूर्व दिशा में पश्चिम-मुख बैठ गये। सब बच्चों को उत्तर-दक्षिण दिशाओं में पास पास बिठाकर प्रारम्भिक निर्देश देने लगे:—

भावना—देखो! यज्ञ विष्णु का स्वरूप है। विष्णु व्यापक है—"यज्ञो वै विष्णुः"। ऐसी पवित्र वेदी के ऊपर मान लो कि हम अब ईश्वर के दरबार में बैठे हैं और परमात्मा हमारे साक्षी हैं, हमारे यज्ञ में सम्मिलित हैं। ऐसी दृढ़ भावना रखते हुए बड़ी श्रद्धा और प्रेम भाव से इस कार्य को करें और इन नियमों का सावधानी से पालन करें।

नियम—(१) जहां जहां जो कोई बैठ गया है अपने

आसन को ग्रहण करके फिर उठक-बैठक न करे। धैर्य के साथ और सभ्यतापूर्वक बैठा रहे। (२) आलस्य, प्रमाद का त्याग करे। थूक, बलग़म डालने से बचे। चुटकी बजाने, अँगड़ाई और जंभाई लेने में बड़ी सावधानी करे। जैसे शिष्य अपने गुरु के सामने या विद्यार्थी अपने मास्टर के सामने और प्रजा राजा के दरबार में शिष्टाचार का ध्यान रखकर असभ्य चेष्टा से बाज़ रहती है ऐसे ही इस पवित्र वेदी के ऐसे पवित्र कार्य में सावधान रहे। (३) जब भी प्रार्थना शुरू होने लगे अपने मन को तैयार कर लेवे और ऐसी प्रसन्नता अन्दर पैदा करे कि अब मुझे अमूल्य ज्योति से सम्बन्ध जोड़ना है। (४) नित्यकर्म के अन्दर तो सब उपस्थित सज्जन मिलकर प्रार्थना के मन्त्र बोलते हैं किन्तु बड़े यज्ञों और संस्कारों के अन्दर जहां विधिपूर्वक यजमान, पुरोहित और ऋत्विजों का वरण किया गया हो तब केवल एक ही विद्वान और यज्ञविधि का ज्ञाता मन्त्रों का उच्चारण करे और बाकी सब सम्मिलित सज्जन चित्त को एकाग्र करके परमात्मा में ध्यान लगावें और मन्त्रों और अर्थ सहित प्रार्थना को पूरे ध्यान और चिन्तन के साथ सुनें। (५) यज्ञ के आरंभ से समाप्ति काल तक कोई भी सज्जन यज्ञ सम्बन्धी बात के अतिरिक्त और कोई किसी प्रकार की बात न करे। (६) यजमान और अन्य कर्मचारी अपनी इच्छा से जल्दबाज़ी करके कोई क्रिया करने न लग पड़ें। जिसे उन्होंने उपयुक्त पदाधिकार देकर वरा है उसकी ही आज्ञा के आधीन हो कर शुभ कार्य को सफल बनाने में सावधान रहें।

अभी निर्देशों का सिलसिला चल ही रहा था कि आये लोगों में से एक महाशय जो up-to-date gentleman की तरह बूट पतलून कसे हुए खड़ा था, शरीर पतलून की रस्सियों

से कसा हुआ था, बूट उतारना अपना अपमान समझता था, और कुर्सी भी न देखकर खड़ा हो गया था कहने लगे—यार, ये तो बड़ी देर लगा रहे हैं और व्यर्थ हमारा समय नष्ट कर रहे हैं। आओ हम चलें। पता नहीं यज्ञ कब शुरू होगा। यह कह कर चल दिया। बैठे हुए सज्जनों में से भी एक आदमी बोल पड़ा, महाराज! यह क्या पोप-लीला आप रच रहे हैं। हम तो शहरों में जाते हैं। प्रति सप्ताह समाज में भी बड़ा बड़ा यज्ञ होता है। त्योहारों पर तो ख़ास तौर पर समाज मन्दिर में हम सब यज्ञ करते हैं। वहां तो ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं देखा। संस्कारों में भी जाते हैं। ख़ूब हंसी मज़ाक और बातें चलती हैं। भाग्य से (नदीनां संयोग) तो आर्यसमाजियों में ऐसे ही मौकों पर मेल जोल हुआ करता है। इस वक्त भी यदि जिह्वा बन्द रहे तो फिर उत्सव या जल्से या ख़ुशी का मज़ा क्या आया?

महात्मा—बात का मतलब तो आपका ठीक है किन्तु बात ग़लत है। मेरे निर्देशों का जो उद्देश्य है वही आप का उद्देश्य है। केवल समझ का भेद है। कृपा कर के आप बतलायें कि आप कौन हैं ताकि मैं उसी प्रकार का जवाब देकर आपको सन्तुष्ट करूं।

वही आदमी—मैं कौन हूं? हूं तो आदमी। क्या आप नहीं देख रहे?

महात्मा—क्रोध व धृष्टता के लिये क्षमा करें। आप आदमी आकृति से हैं या स्वभाव से भी? यद्यपि 'कौन' से मेरा अभिप्राय तो और था, किन्तु आपको शब्दों को कैद करने की आदत भी है जैसे पुलिस चोर बांधती है, इसलिये आप आदमी का भी लक्षण कृपा करके बतला दें।

वही आदमी—आदमी का लक्षण और क्या करूं, जब सशरीर आप के सामने हूं।

महात्मा— किसी महापुरुष ने कहा है—

तू कज़ मेहनते दीगरां बे ग़मी, न शायद कि नामत निहन्द आदमी

अर्थ—मैं तो इतनी मेहनत करके आप लोगों को जौहर समझाने की कर रहा हूं और आपको मेरी मेहनत की दाद तो दूर रही, इतनी निर्दयता है। जैसे एक किसान बड़ा परिश्रम करके बीज बोता है और पशु उसे पैरों से कुचल लताड़ देता है या जैसे कोई माली पनीरी लगाता है और कोई पशु आता है और मुख से उखाड़ डालता है।

भक्त—ये महाशय समाज के एक मान्य सदस्य हैं और स्वाध्याय शील हैं और अच्छे निपुण शास्त्रार्थी हैं।

महात्मा—धन्य हैं। इसीलिये शायद अधीर हैं और शब्द पकड़ने वाले हैं। स्वभाव से विवश हैं। स्वाध्याय भी इनका दूसरों से वाद-विवाद करने और हराने के लिये है, अपनी आत्मा के लिये नहीं। दृढ़ आर्य का भी यह लक्षण नहीं। आर्य शब्द बहुत ही पवित्र और उच्च शब्द है। आर्यसमाज का सदस्य बन जाना चन्दा देकर और बात है, और सचमुच आर्य बनना और बात है।

आजकल की प्रथा ही ऐसी पड़ गई है कि जो मनुष्य विद्या-सम्पन्न या ज्ञान-संपन्न हैं उन्हें प्रत्येक क्रिया में "क्यों ? कैसे ?" ऐसे प्रश्नों का होना स्वाभाविक है। जिस क्रिया के साथ हेतुज्ञान का सम्बन्ध नहीं उस क्रिया से बुद्धिमान को यथार्थ सन्तोष होना अति कठिन है।

शास्त्रकारों की बातें पहले से ही विचारकी कसौटी पर चढ़ी हुई

हैं और ईश्वरीय आज्ञाओं में अल्पज्ञ जीवों की ऐसी कल्पना करना अनुचित जंचता है। कहां विद्या व बुद्धि के सागर, अनेक ब्रह्माण्डों के नायक, अनन्त सूर्य चन्द्र आदि के कर्त्ता, हर्ता, भर्ता, विश्वव्यापक परमात्मा की बुद्धि और कहां ऐसे तुच्छ से जीव की तर्क व विचार की शक्ति। अन्तरं महदन्तरम्। अन्तर और महान् अन्तर है। इस लिये उस की आज्ञाओं को आंख मूंद मान लेना चाहिये। उन में क्यों, कैसे व ननु-नच करने का अवकाश नहीं। नहीं मालूम किस प्रयोजन से, किस विचार से भगवान् ने वेदों के सिद्धान्त बनाये हैं। अल्प-शक्ति जीव की अति अल्प और भ्रान्ति आदि दोषों से दूषित बुद्धि ईश्वरीय आज्ञाओं के मूल तत्त्व को कैसे पहचान सकती है?

आर्य समाजी—निःसन्देह आप का कथन ठीक है। किन्तु हम लोग तो क्रिया का मर्म व हेतु को बिना समझे जाने क्यों विधान मात्र से "ऐसा करो, वैसा करो" ऐसा कहने मात्र से कैसे सन्तुष्ट हो सकते हैं? भला जो क़ानून राजा की तरफ़ से प्रजा के लिये बनाये जाते हैं क्या उन पर योग्य वकील बारिस्टर बहस नहीं करते?

अधिकार नहीं कहूंगा—

महात्मा—आपकी इच्छा है पर अधिकार नहीं कहूंगा। क्योंकि सरकारी क़ानून के भिन्न भिन्न अर्थ लगते हैं और उन का तात्पर्यार्थ और मिथ्यार्थ बुद्धि द्वारा व तर्क द्वारा ही निकालते हैं। पर साधारण लोग असमर्थ होने के कारण, बुद्धि मन्द होने के कारण, उन आज्ञाओं को जैसा सुना वैसा मानने के लिये विवश हो सकते हैं। परन्तु स्वच्छ-बुद्धि सम्पन्न ऐसा क्या, क्यों करने लगे।

जिन्हें भगवान् ने बुद्धि का प्रकाश दिया है वे उस प्रकाश से ही परमात्मा की विभूतियों को देखते हैं। कोई कारण नहीं कि वेदाज्ञा के विषय में बुद्धि की स्वाभाविक गति को रोक दिया जाय। शास्त्रकार कहते हैं, स्वयं महर्षिदयानन्दजी महाराज लिखते हैं—*'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।' किन्तु कर्मकाण्ड का विषय तो श्रद्धा से कर देखने का है। जिन समाजों और सभाओं या संगठनों में आचरण और कर्म की कमी है और जिन में कर्म के ऊपर श्रद्धा नहीं वह समाज दुनियां में इतनी सर्वमान्य नहीं बन सकती और न ही दूसरों को अपने अन्दर समाविष्ट कर सकती है, न ही आकर्षित कर सकती है। गीता में लिखा है—'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:' राजर्षि जनक आदि कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

कर्म प्रधान—

आर्यशास्त्रकारों का सिद्धान्त है कि उपासना (भक्ति) और ज्ञान इन निष्ठाओं के सम्पादन से पूर्व कर्म निष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है। कर्म-निष्ठा ही भक्ति और ज्ञान की जननी है।

आर्य समाजी – क्या हम ऐसे ही मान लेवें ? कर्म के लिये क्या वेद ऐसी आज्ञा देता है ? मुक्ति तो मनुष्य की ज्ञान से होती है। बिना ज्ञान तो आवरण छूटता नहीं। हम तो यही समझते हैं कि जो लोग सदा भक्ति में रत रहते हैं वह भी व्यर्थ है। कर्म तो शरीर को पैदा करता है जो जन्म-मरण के चक्र में फंसाये रखता है और आप कर्म पर इतना बल दे रहे हैं।

महात्मा—आप की बात सोलह आने सही है। मगर महल की सीढ़ी में कर्म सब से पहले की सीढ़ी है। उपासना

* वेदों में ज्ञानमूलक बुद्धियुक्त वाक्य रचना की गई है।

मध्यम सीढ़ी और ज्ञान तीसरी तथा अन्तिम सीढ़ी है। उसके बाद और कोई सीढ़ी नहीं, लक्ष्यस्थान है। जैसे डिप्टी कमिश्नर बनने के लिये बी. ए, ऐम. ए. होना लाज़मी है किन्तु पहली श्रेणी के बिना बी. ए., ऐम ए. होना असंभव है। इसलिये पहली श्रेणी मैट्रिक, बी. ए.,ऐम. ए. की जननी है। बिना कर्म के ज्ञान के भवन पर चढ़ना ऐसे ही असंभव है और सब से प्रधान कर्म है।

कर्म, अकर्म, विकर्मः—

आर्यसमाजी—कर्म किसे कहते हैं ?

महात्मा—मोटा लक्षण जिसे सब समझ सकें "जिसके करने से मनुष्य के मन को बल और आत्मा को यश मिले, वही कर्म है।" इसके अतिरिक्त वह कर्म न होगा बल्कि या वह अकर्म होगा या विकर्म।

आर्यसमाजी–अकर्म, विकर्म से आपका क्या अभिप्राय है ?

महात्मा—मेरा अभिप्राय तो नहीं बल्कि शास्त्रकारों का अभिप्राय यह है कि जिससे अपने शरीर के सिवाय किसी को लाभ न पहुंचे, वह जो केवल अपने ही शरीर के लिये किया जाय, वह अकर्म है। उदाहरणार्थ—केवल अपने लिये ख़ुद खाना, पीना, कमाना। और जो बुरे कर्म करने हैं उन को विकर्म कहते हैं।

आर्यसमाजी—अर्थात् कर्म वह हुआ जो दूसरों के लाभ के लिये हो।

यज्ञ का स्वरूप और भेद—

महात्मा—हां, ऐसे समझो और इसके भी दर्जे हैं और इन सबका नाम यज्ञ है क्योंकि यज्ञ का स्वरूप परोपकार है। जितना

जितना किसी के कर्म से जितने जितने क्षेत्र तक लाभ पहुंचता है वह परोपकार है और यज्ञ है। उत्तम, मध्यम और श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम इत्यादि। उदाहरण के तौर पर समझो (१) "दान आदि यज्ञ" एक रोगी की तन या धन से सेवा करना; दूध, वस्त्र, दवाई से सहायता करना भी यज्ञ हैं। इसका सम्बन्ध एक आदमी से है (२) किसी को अन्न-भोजन देना, विद्या पढ़ाना भी यज्ञ है। अनाथालय में लड़कों को भोजन देना, सुपात्र को दान देना, दीनों की सेवा करना, छोटों से प्रेम करना, दया करनी, उस एक से ज़्यादह है मगर विशिष्ट है। (३) तालाब, कुआं, धर्मशाला बनवाना भी यज्ञ है परन्तु सीमित स्थान के लिये।

संगतिकरणः—समाज की सेवा करना, सत्संग करना, सत्संग का प्रबन्ध करना और सत्संग कराना भी यज्ञ है मगर सीमित समाज के व्यक्तियों की।

(४) जाति की सेवा करना, जनता से प्रेम करना इस से बड़ा यज्ञ है किन्तु केवल एक जाति सीमित रहती है। (५) देश सेवा और भी बड़ा यज्ञ है पर दूसरे देश वञ्चित रह जाते हैं।

देवपूजन—(६) सन्ध्या, स्वाध्याय, भक्ति भी यज्ञ हैं (७) माता-पिता, आचार्य, गुरु आदि बुज़ुर्गों की सेवा करना और सत्कार करना भी यज्ञ है।

श्रेष्ठतम कर्म—संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य हैं अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना, यह है सब से महायज्ञ।

व्यवस्था की बात है कि स्थूल चीज़ स्थूल शरीर तक लाभ दे सकेगी। जब चीज़ सूक्ष्म हो जाती है तब उसका लाभ भी बहुत विस्तृत हो जाता है। यजुर्वेद में अग्निहोत्र को श्रेष्ठतम कर्म माना गया है और सब से पहला पहला मन्त्र ही मनुष्य के कल्याणार्थ यज्ञ-कर्म का उपदेश करता है।

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघश ँ सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात वह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।

संसार भर के प्राणियों का पालन-पोषण जिससे होता है अथवा जिस पर संसार के प्राणी मात्र आश्रित हैं, उस का बीज यज्ञ है।

इससे मनुष्य को तो दो प्रकार का लाभ है और बाकी जीवों को एक प्रकार का लाभ है, क्योंकि बाकी जीवों की योनि भोग-योनि कहलाती है इस लिये उनके लिये भोग उत्पन्न करता है और मनुष्य के लिये भोग के अतिरिक्त कर्म की भी योनि है, इसलिये इसके लिये उत्तम भोग और भौतिक व आत्मिक लाभ भी होते हैं। यज्ञ से न केवल बुद्धि पवित्र होती है बल्कि जाति की उन्नति और वेद रक्षा भी होती है और भी बड़े लाभ हैं।

यज्ञ के लाभ

१ आध्यात्मिक

१	२	३	४
अग्नि के गुणों को धारण करना	वस्तु संशुद्धि	जातीय उन्नति	वेद रक्षा

२ आधिभौतिक

आर्यसमाजी—"बड़े आश्चर्य की बात है कि यज्ञ से मनुष्य की बुद्धि की पवित्रता, जातीय उन्नति और वेदरक्षा भी हो जाय। यह तो फिर समझने के लिये विशेष समय देकर लाभ लेना चाहिये। अब तो बहुत देर हो गई है। आप हवन कर लेवें और हम को फिर दूसरे वक्त समझायें।"

हवन साधारण रीति से हो गया और सब चले गये। इस के बाद भक्त जी तो पाठ में लग गये और बच्चे अपनी पढ़ाई में। गृहपत्नी अपने घर के काम काज में लग गईं। महात्मा जी स्वाध्याय और ध्यान में मग्न हो गये। निवृत्त हुए ही होंगे कि प्रकाश आ गया। महात्मा जी से यों कहा:—

महाराज! यज्ञ तो लाभदायक हुआ। मगर मैं यह नहीं समझा

कि वेदी इस विशेष प्रकार से बनाने की क्या जरूरत थी? जल देते समय भिन्न भिन्न मन्त्र बोल कर भिन्न भिन्न दिशा और स्थान से पानी एक नाली बना कर डाला जाता है। इससे पहले जल को मन्त्रोच्चारण करके पान किया जाता है। ये सब निरर्थक सी क्रियायं मालूम पड़ती हैं। इतने में भक्त जी आ गये। उन्होंने महात्मा जी का उपदेश इस बारे में पहले सुना हुआ था और नोट लिखे हुए थे। प्रकाश को कहा कि यज्ञ की कापी से जाकर पढ़ लेवे। अब महात्मा जी थके हुए हैं। कभी किसी अवसर पर इनके मुखारविन्द से भी इसे श्रवण करने का मौक़ा मिल जायगा। कामना करो, अधिकारी बनो और परमात्मा इच्छा पूरी कर देते हैं।

चौथी झांकी

प्रशंसनीय अग्नि समिधा

सूर्यप्रकाश तो छुट्टियों पर आया हुआ था। उसे तो कहीं आना जाना नहीं था। बाकी सब अपने अपने काम पर चले गये। सूर्यप्रकाश के दिल में जिज्ञासा बढ़ी। दिल में सोचा अब तो मैं और महात्मा अकेले हैं। एकान्त में ही लाभ उठावें। भोजन आदि से जब निवृत्त हुए तो एक पीपल के पेड़ के नीचे ठण्डी छाया में सूर्यप्रकाश और महात्मा जी चारपाई और तख़्त-पोश डाल जा लेटे। सूर्यप्रकाश अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिये महात्मा जी को दबाने लगा। महात्मा जी ने भी दिल में जान लिया कि अब इसमें जिज्ञासा और श्रद्धा उत्पन्न हुई है—श्रद्धावाँ लभते ज्ञानम्-श्रद्धावान् को ही ज्ञान प्राप्त होता है। अब इसे समझाना चाहिये।

महात्मा—बेटा! अब तुम आराम करो। गर्मी का समय है। मुझे न दबाओ। दबाने से ज़िस्म ढीला पड़ जाता है।

सूर्यप्रकाश—मैं तो सेवा से वञ्चित ही रहा।

महात्मा—तुम्हारा आन्तरिक भाव ही सेवा है। श्रद्धा का स्थान तो हृदय है। हां, कोई तकलीफ़ हो या थकान हो तब तो

दबवाने में कोई डर नहीं। बिना आवश्यकता के तन-सेवा भी इतना ही निन्दनीय है जितना धन बिना ज़रूरत के दान में ले लेना।

प्रकाश—मैं तो यह सेवा अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये कर रहा था कि दबाता भी रहूंगा और कोई उपदेश भी लेता रहूंगा।

महात्मा—वाह! वाह!! यह तो बहुत उत्तम विचार तुम्हारा है। लो सुनो! मगर श्रद्धा से और कान देकर सुनना:—

आजकल के नौजवान पश्चिमी सभ्यता के अभिमानी थोड़ी सी पदार्थ-विद्या (साइन्स) को पढ़ कर सारी प्रकृति के विषय में ज्ञान रखने का दावा करने लग जाते हैं। तुम यह न समझना कि तुम बी० ऐस० सी० हो, तुम्हें ही कह रहा हूं। मैंने सर्व साधारण की बात कही है। बहुत से इस अधूरी साइन्स के प्रताप से नास्तिक बन जाया करते हैं।

यज्ञ की वस्तुएं:—

तुम देखते हो कि यज्ञ-हवन करने में क्या क्या वस्तु प्रस्तुत की जाती है। लकड़ी जिसको समिधा कहते हैं। यह याद रक्खो कि हर एक लकड़ी को समिधा नहीं कहा जाता। जो लकड़ी हवन की आग के लिये विशिष्ट है उसका नाम समिधा है। आग जलाने वाली लकड़ी को लकड़ी ही कहते हैं। दूसरी सामग्री जिस में अनेक प्रकार के गुणों वाली सुगन्धित ओषधियां हैं, अन्न मिष्टान्न भी शामिल हैं। घी, जलपात्र, आचमनी, घी के लिये चमचा, कटोरी, सामग्री के लिये थाली, दीपक आदि सब काम की चीज़ें रक्खी जाती हैं।

समिधाः—

प्रकाश—अगर आप रुष्ट न हों तो मेरा यह प्रश्न है कि लकड़ी और समिधा में क्या भेद है ? लकड़ी पंजाबी या उर्दू शब्द है और समिधा उसका संस्कृत शब्द है। चूंकि पिछले ज़माने में संस्कृत बोली जाती थी और पुस्तक भी संस्कृत में थे, इसलिये समिधा लिख दिया। आप क्यों भेद करते हैं ?

महात्मा—संस्कृत में लकड़ी को काष्ठ कहते हैं जिसे पंजाबी में काठी बोलते हैं। समिधा भी यद्यपि काष्ठ या लकड़ी ही है परन्तु लकड़ी के कहने से कोई पहचान नहीं हो सकती कि किस चीज़ की लकड़ी है। कीकर, भाखा, शीशम, दयार, आक, बेर, जामन, आम, पीपल बड़ की लकड़ी सब लकड़ी कहलाती है। मगर जब हम समिधा कहेंगे तो इसमें विशिष्ट हो जायेगी।

समिधा ऐसा शब्द है कि वह अपनी परिभाषा आप करता है। जैसे आग आग में भेद है, जैसे भूमि भूमि में भेद है, ऐसे ही लकड़ी लकड़ी में।

प्रशंसनीय अग्निः—

चूल्हे की अग्नि से लोग हुक्के के लिये अङ्गारा उठा लेते हैं। इस अग्नि को मुंह से फूंक कर जलाते हैं परन्तु हवन की अग्नि के जलाने में भी श्रद्धा से काम लिया जाता है। फूंक मार कर जलाना मना है। अपवित्र कार्य के लिये अङ्गारा उठाना तो दूर की बात, इस अग्नि पर तो हाथ सेकना भी निषिद्ध है और काम ले सकना कहां ? देखो, मकान बनाने के लिये एक ज़मीन ली गई। एक स्थान पर हमने ही पाख़ाना बनवाया। अब वहां चौका

नहीं लगाया जायगा। वहां जाने से ही फिर हाथ मुंह धोने पड़ेंगे। साधारण कमरे में जूता ले जा सकते हैं पर जहां चौका, रसोई खाना बनाया है वहां जूता नहीं ले जा सकते। और फिर जहां यज्ञशाला या उपासनालय बनाया होगा वहां रोटी नहीं पकायेंगे। वह स्थान केवल धर्म-कार्य के लिये ही विशिष्ट होगा। ऐसे ही लकड़ी, आम लकड़ी जहां डाल दी जाय, सड़ी-गली हो, ख़राब हो, सब आग में जल जावेगी। टेढ़ी हो, मोटी हो, छोटी हो, जैसी भी हो और जिस प्रकार की हो, जिस वृक्ष की हो, जलाई जावेगी। पर हवन की लकड़ी के वृक्ष भी विशेष हैं।

प्रकाश—यह सब कुछ अपने ख़्याल की बनाई हुई बातें हैं। मतलब तो आग जलाने से है। अगर ख़ाली आग जली तो इसका नाम आग हो गया, अगर सामग्री डाल कर जला दी, तो इसका नाम हवन हो गया।

महात्मा:—बेटा! ऐसा न कहो। एक आदमी ने मिर्चों की लकड़ियों को जला दिया। ऐसी ज़हर फैली कि जहां जहां हवा उसे ले गई वहां वहां के आदमियों को छींकें आने लगीं और जलाने वाले को बिना देखे बुरा भला कहने लगे और आग की भी निन्दा करने लगे। आपने हवन किया, सुगन्धित पदार्थ जलाये। जहां जहां सुगन्ध गई वहां के लोग प्रशंसा करने लगे। साधारण चूल्हे के आग की न निन्दा है, न प्रशंसा। तो इस हवन की अग्नि का नाम प्रशंसनीय अग्नि है। इसे अंग्रेज़ी में Sacrificial fire) कहते हैं। अब देखो पहले मैं तुम को अग्नि का लक्षण कर दिखाऊं और इसके सम्बन्ध में समझाऊं।

अग्निः—

अग्नि शब्द संस्कृत का है—अग+नि। अग् के अर्थ आगे, (नी) ले जाने वाली। जो आगे (उन्नति) की तरफ़ ले जाने वाली है उसका नाम अग्नि है। इस बात को याद रखना कि अग्नि अपने उपासक को अपने ही गुणों का कर देती है। यह मुझ से फिर पूछना। पहले अग्नि के सम्बन्ध में सुन लो। अग्नि देव की विभूति देखो:—

(१) अग्नि घर घर में जल रही है। साधारण रीति से कोई जला देवे, पवित्र हो या अपवित्र।

(२) अग्निहोत्री पुरुष अतिथि की तरह प्रातः सायं अपने घर में बड़ी श्रद्धा और सावधानी से जगा कर प्रदीप्त कर के दिव्य लाभ पा रहे हैं।

(३) इसके अतिरिक्त इस प्रदीप्त और स्थूल अग्नि से जो अन्य अनगिनत सांसारिक कार्य और उपकार हो रहे हैं उन्हें भी हम सब जानते हैं।

(४) यह अग्नि अपने सूक्ष्म अप्रदीप्त (न दीखने वाले) रूप में हर जंगल, हर वृक्ष, हर समिधा और हर पदार्थ में चोर की तरह छिपी बैठी है।

(५) हर लकड़ी में ही नहीं, बल्कि पानी में, किरण में और हर प्रयोग के योग्य चीज़ में छिपी हुई है। साइन्स-दान् (वैज्ञानिक लोग) इस प्रत्येक वस्तु में व्यापक भौतिक अग्नि का असंख्यों प्रकार से उपयोग ले रहे हैं।

(६) पर वैज्ञानिक लोग भी जिस सूक्ष्मता में नहीं घुस पाते उस में घुस कर देखें तो हमें दीखता है कि यह अग्नि देव प्रत्येक

जीवित प्राणी में भी उस का जीवन और आत्मा होकर विराजमान है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को बनाता हुआ यह अग्नि जन जन में बैठा हुआ है। इसी के कारण प्रत्येक जन अपने व्यक्तित्व में बंधा हुआ है।

ब्रह्मांड की अग्नि —

(७) आत्म अग्नि, जन-हितकारी अग्नि के अतिरिक्त और भी रूप धारण करती है। यह अग्नि ज़हर में, विष में, अमृत में, राजा में, प्रजा में, एक व्यक्ति में, एक जन-समूह में भी निवास करती है। यही विश्व अग्नि, समाज-अग्नि और राष्ट्राग्नि के रूप में प्रकट होती है जिस में बड़े बड़े जन समूह भी समय आने पर आत्म-हवन किया करते हैं। इसी तरह इस अग्नि देवता की विभूति अनन्त प्रकार से दर्शनीय है। इसका पार वाणी नहीं पा सकती।

अथर्ववेद में, यजुर्वेद में, औरऋग्वेद में भी पहले एक प्रश्न के रूप में मन्त्र आता है, फिर उसके उत्तर में मन्त्र है।

प्रश्न—'पृच्छामि त्वा विश्वस्य भुवनस्य नाभिम्' अर्थात् मैं तुझ से पूछता हूं कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को बांधने वाली वस्तु कौन है?

उत्तर—'अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः' अर्थात् यह यज्ञ संपूर्ण ब्रह्मांड की नाभि है, बांधने वाला है। इस यज्ञ को अल्प जीवों को समझाने के लिये अग्नि होत्र द्वारा सिद्ध किया गया है। अग्नि जो सर्व संसार में व्यापक रूप से है और इसके बिना कोई कार्य नहीं हो सकता और अग्नि सब देवताओं में प्रथम भी है और उनकी मध्यनाभि भी है। जैसे, आकाश, वायु, (**अग्नि**) जल,पृथ्वी। अग्नि के बिना पृथ्वी निरर्थक, जल निरर्थक। ऐसे आकाश और

वायु अग्नि से बांधे हुए हैं। इस लिये श्रद्धा से समझने की कोशिश करो।

प्रकाश—श्रद्धा तो मैं रखता हूं। मगर क्या करूं, रहा नहीं जाता। अभी सवाल पैदा हो गया। आप प्रशंसा करते हैं और मुझ में शंका खड़ी हो जाती है कि क्या अग्नि का श्रद्धालु उपासक अगर अग्नि पर हाथ डाले, जो अपना सब कुछ अग्नि पर न्यौछावर कर देने वाला है, तो क्या अग्नि उसे न जलायेगी ?

महात्मा—ज़रूर जलायेगी। यही तो ख़ूबी है और अग्नि का उपदेश है। अग्नि का अर्थ न्यायकारी भी है।

अग्नि पथप्रदर्शक भी है और न्यायकारी भी है:—

अग्नि के "अग" शब्द का अर्थ अगवा "नी" के अर्थ ले जाने वाला, पदप्रदर्शन करने वाला, नेता, लीडर, जो मार्गदर्शकों में भी अगुवा हो। जैसे वकीलों में मजिस्ट्रेट, जज अगुवा है जो कभी भी न्याय को नहीं छोड़ता। ऐसे हो अग्नि भी उपदेश करती है लेकिन अपने उपासक की भी रियायत नहीं करती। अग्नि स्वरूप प्रभु भी किसी की रियायत नहीं करते चाहे कितना भी उसका प्यारा क्यों न हो। बल्कि अग्नि अपने उपासक को प्रभु के निज गुण न्याय का अधिकारी बनाती है।

अग्निहोत्री दया और न्याय के गुणों को धारण करता है। अग्नि की विशेषता दया और न्याय दोनों हैं और ये दोनों प्रभु के निज गुण कहे गये हैं। जैसे ओ३म् निज नाम है ऐसे यह दोनों गुण भी निज हैं। बाकी नाम भी गुणद्योतक और गुण भी विशेषण रूप है।

समिधा का अर्थ व गुणः—

प्रकाश—अच्छा, अब समिधा का वर्णन कीजिये।

महात्मा—समिधा दो शब्दों से बना है—सम+धा, जो समता को धारण करने वाली हो (१) वह लड़की जो रूप में सीधी और सम हो, टेढ़ी न हो (२) मोटाई में सम हो (३) लम्बाई में हवन कुण्ड के अनुकूल सम हो (४) धुआं ज़्यादह न निकालने वाली हो। जितना धुआं चाहिये उतना निकालने वाली हो—उसे सम कहते हैं (५) वज़न में बहुत भारी न हो। ठोस न हों, बहुत हल्की न हो (६) बहुत रूखी न हो, बहुत चिकनी न हो (७) बहुत कठोर बहुत लचकदार न हो (८) कड़वी, खट्टी न हो; मीठी, कसैली न हो (९) कुरूप न हो (१०) अपवित्र, पक्षियों की विष्ठा वाली और कीड़ों से खाई हुई न हो। (११) शूद्र जाति की लकड़ी न हो; शेष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाति की हो।

वृक्षों के वर्ण-ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रः—

प्रकाश हँस पड़ा और कहा कि यह आज सुना है कि वृक्ष भी वर्ण रखते हैं।

महात्मा— बेटा! तुम क्यों न हंसो। आज न सुनते तो कब सुनते? तुम्हारी अपनी आयु अभी बचपन की है। अभी तक तो कालिज में पढ़ रहे हो। ऐसी पुस्तकों के स्वाध्याय का तुम को अवकाश कहां? और ऐसा सत्संग तुम ने पहले कब किया?

प्रकाश—हां महाराज! यह तो बिलकुल ठीक है।

महात्मा—पशु व पक्षियों में भी यही वर्ण चलता है। इस के बिना काम नहीं हो सकता। जो वृक्ष ब्राह्मण के से गुण रखते

हैं उनकी जड़ें नीचे अति विस्तृत होती हैं। वे अपने भरोसे आप होते हैं, जैसे पीपल, बड़ आदि। क्षत्रिय वे वृक्ष हैं जो युवक की तरह मज़बूत वज्रसमान होते हैं जैसे जंड, कंडा आदि। वैश्यवृत्ति वे होते हैं जो फलदार होते हैं और उन का तना बहुत मज़बूत होता है, शाखाएं फैली हुई होती हैं, जैसे आम, बेर, बिल्व। शूद्रवृत्ति वे वृक्ष होते हैं जो चूल्हों के जलाने के, भट्टी में जलाने के, इमारत के काम लगते हैं जैसे—टाहली, शीशम, कीकर, भान इत्यादि। पहले तीनों वर्णों के अंग अंग बीमारियों के काम आते हैं। (इसके सम्बन्ध में परिशिष्ट नं० १ पर दृष्टि डालिये)।

यज्ञ और साइन्स विद्या--

सूर्य प्रकाश—मुझे तो सब से पहले कोई साइन्स संबन्धी बात यज्ञ से बतला देवें तब तो मेरी श्रद्धा कुछ और बढ़ जायगी वरना जो थोड़ी सी भी पैदा हुई है, वह भी जाती रहेगी।

महात्मा—अच्छा, सुनो। मैं ख़ुद तो कुछ नहीं जानता। हां, वैज्ञानिक लोगों का कथन तुम्हें सुनाता हूं। समझते तुम स्वयं ही जाना, तुम साइन्सदान हो।

(१) लकड़ी के जलाने से एक प्रकार की एल्डीहाइड * (Aldehyde) नामी गैस पैदा होती है जो सब प्रकार के कीड़ों (जर्म्स) को मार देती है और यह चीज़ कैमिस्ट्री में बहुत मशहूर

* एक सेर चीड़ की लकड़ी के धूम में प्रतिशतक ३२ भाग, शाहबलूत की लकड़ी में प्रतिशत ३५ भाग, शुद्ध खांड में प्रतिशत ७० भाग और साधारण धूम में प्रतिशत १८ भाग एल्डीहाइड गैस के होते हैं (मिस्टर टिरलिट एक प्रसिद्ध आविष्कारक की राय)।

है। पानी के एक सौ भाग में ४० प्रति शतक इस गैस को मिला कर यह फ़ार्मैलीन (Formalin) दवाई बाज़ारों में आम तौर बिकती है जिसे भिन्न भिन्न तरीकों के प्रयोग से हम रोगों और कृमियों को दूर कर सकते हैं।

(२) खांड के जलाने से "फ़ार्मिक ऐल्डीहाइड" (Formic Aldehyde) गैस निकलती है। कैमिस्ट्री में खांड तीन प्रकार की है—गन्ने की, फलों की, और अंगूर की।

(३) कार्बन डाइआक्साइड (Carbon Dioxide) (जो सोडा, लैमनेड में भी लोग पीते हैं) इससे प्यास दूर होती है। भोजन पच जाता है। मगर यह सीधी पेट में जाती है, फेफड़ों पर असर नहीं रखती। लेकिन हवन से निकली कार्बन डाइआक्साइड सांस के द्वारा फेफड़ों में असर करती है। चूंकि यह गैस साधारण हवा से डेढ़ गुना भारी होती है इसलिये हवनकुण्ड के पानी की वजह से नीचे ज़मीन में चली जाती है और अनाज आदि को ख़ूब पकाती है। इस गैस से सूरज की किरणें गुज़र तो जाती हैं पर ज़मीन से टकरा कर वे किरणें बाहर नहीं जा सकतीं। वायुमण्डल के प्रति १००० आयतन में ३ आयतन कार्बन डाइआक्साइड गैस है। यह भूमि पर एक पर्दे के आकार में फैली हुई है। भूमि और इस पर्दे के बीच गर्मी कैद रहती है। ज्यों ज्यों वह पर्दा मोटा होता जावेगा, त्यों त्यों थोड़ी थोड़ी गर्मी निकल कर वायुमण्डल में बिखर जायगी। आक्सिजन या नाइट्रोजन में इस गर्मी को रोकने की ताकत नहीं। अगर यह गैस वायुमण्डल में कम हो जाय तो गर्मी के निकलने से इतनी गर्मी पड़ने लगे कि भूमि किसी भी जीव के रहने के अयोग्य हो जाय। इसकी मात्रा में थोड़ा सा अन्तर हो जाने से

बड़े बड़े परिवर्तन हो जायंगे। अगर इस गैस की मात्रा को दुगुना किया जाय अर्थात् ३ के स्थान पर ६ प्रति हज़ार हो जाय तो ज़मीन की सब बर्फ़ पिघल कर ध्रुवों का जलवायु समशीतोष्ण हो जायगा। अगर मात्रा को आधा कर दिया जाय तो सारी पृथ्वी पर बर्फ़ ही बर्फ़ छा जाय। इसलिये घर घर हवन या भारी यज्ञ करने से कृत्रिम कार्बन डाइआक्साइड तैयार होती है। अधिक गर्मी का कारण, पानी की अधिकता और वनस्पतियों की अधिकता और फल, अन्न आदि होंगे। जहां जहां कार्बन ज़्यादह होती है वहां बड़े लम्बे लम्बे पेड़ और उनके घने जंगल होते हैं। सुगन्धित औषधियों के जलने से प्राणियों की बीमारियां दूर होती हैं और फलतः ये हवन के क्रियात्मक सूचीवेध (इन्जैक्शन) का काम देती हैं।

प्रकाश—महात्मन्! आप तो कहते थे कि हम साइन्स नहीं जानते।

महात्मा—अब भी मैं यही कहूंगा कि यह मेरा ज्ञान नहीं, वैज्ञानिकों का है। और अभी तो वैज्ञानिकों का ध्यान यज्ञ की साइन्स की तरफ़ नहीं गया। तुम्हें बहुत अचम्भा प्रतीत होगा कि हमारे वेद और ऋषि-मुनियों ने इस बारे में बहुत कुछ बताया है।

प्रकाश—तो क्या ये बातें जो आपने साइन्स की बताईं, वेदों में भी हैं?

महात्मा—एक मन्त्र नहीं, अनेक सूक्त के सूक्त भरे पड़े हैं। बेटा! हम तो नाममात्र अग्नि को पूजा का स्थान जानते हैं, वह भी अशुद्ध ढंग से। अग्नि के पुजारी तो यूरुप वाले भी हैं जिन्हों ने इसे

अपने वश में कर लिया है और सारे संसार का व्यवहार और धन दौलत इसी से कमा रहे हैं। शास्त्र तो कहते हैं कि जो यज्ञ का सच्चा पुजारी है, धन-सम्पत्ति भी उसी के पीछे पीछे फिरती है और उसे आत्मिक लाभ जो होता है वह तो अमूल्य है ही। अब शारीरिक लाभ तो तुम को मालूम हो गये पर यह समझ लो कि अग्निहोत्री अगर यथार्थ विधि से हवन करे तो कभी भी बीमार न हो बल्कि सब प्रकार की बीमारियां इसी हवन से दूर की जाती हैं। अब वह तुम को तब सुनायेंगे, जब दूसरे भी लाभ उठा सकें।

पांचवीं झांकी

अग्निहोत्र का स्वरूप

अब ५ बज कर कई मिनट हो गये। समय ठण्डा और सुहावना हो गया। भक्त जी भी कई एक प्रेमियों को लेकर वहां पीपल के नीचे आ गये। महात्माजी से नमस्ते की, जलपान के लिये पूछा। महात्मा जी बोले—"प्रकाश ख़ूब सेवा करता रहा है। आप निश्चिन्त रहिये।" अब भक्त जी ने प्रकाश से पूछा—क्यों! अब सन्तोष हो गया। केवल समिधा और घास से हवन करने के विषय में तृप्ति हो गई या नहीं ?

प्रकाश—ओह! वह तो मैं भूल ही गया। धन्य हैं प्रभु कि वह बात मुझे याद नहीं रही, अन्यथा जो आज मुझे प्रसाद मिला है, न मिल सकता। मेरी श्रद्धा बनती न थी और महात्माजी के अनुभवों का लाभ न उठा सकता। आज मुझे इतनी श्रद्धा हो गई है कि अब जो मैं महात्मा जी के मुख से सुनूंगा वह ऐसे भाव से सुनूंगा कि सचमुच मुझे शिक्षा मिल रही है।

भक्त—फिर तो प्रभु का बहुत शुक्र है—धन्यवाद है।

बिना घी सामग्री के हवन का समय और लाभ:—

प्रकाश—भगवन्! धृष्टता की क्षमा चाहता हूं। अवश्य यह

मैं जानता हूं कि वह मेरा पहले दिन वाला सवाल "बिना घी सामग्री के हवन करने का" एक दिन अपने आप हल हो जायगा। मुझे पूछने की आवश्यकता नहीं। अब यह महाराज के अधिकार में है कि कोई और अमृत-वर्षा करें, चाहे इसी का वर्णन करें।

भक्त—अभी तो बड़ा समय है हवन करने को। इस समय हवन का और प्रकार का प्रकरण होगा। न मालूम कौन कौन और आ जावें? अभी वह बात तो केवल हमारे ही बीच की है। दूसरों को इस प्रकरण का क्या पता। अब ही महाराज कृपा करेंगे।

महात्मा—प्रकाश! अगर तुम अपने पिता के साथ कहीं बाहर चले जाओ और तुम को किसी ऐसी जगह शाम आ जावे कि जहां तुम्हारा कोई परिचित नहीं और वह नगर भी नहीं, गांव भी नहीं, केवल सड़क के ऊपर की एक दूकान और धर्मशाला यात्रियों के लिये है तो तुम अपने खान पान के लिये वहां क्या प्रबन्ध करोगे?

प्रकाश—यही कि यदि वहां रोटी का प्रबन्ध न हुआ तो दूकान तो है ही। दूध मिल जावेगा, वह ही पी लेवेंगे। रबड़ी खोआ, मलाई जो मिल गई, वह ही खा कर निर्वाह कर लेंगे। अगर दूध आदि न मिले तो कोई फल, मिठाई, मेवा, पकोड़ा मिल जायगा। आख़िर तो दूकान ही है। कुछ तो दूकानदार ने यात्रियों के लिये रखा होगा?

महात्मा:—अब जब तुम दोनों वहां पहुंचे, इन चीज़ों में से कोई चीज़ प्राप्त नहीं हो सकी। तुम ने देखा कि छोले भुने और मुरमुरे रखे हैं। अब तुम ने कहा, चलो पिता जी! Something

is better than nothing. यही छोले और मुर-मुरे ही सही। ले लिये। खाकर, प्रसन्न होकर, पानी पीकर सो गये। अब दूसरे दिन चल पड़े। तुम ने कहा कि अब यहीं से छोले ले चलें। शायद आगे भी ऐसा हाल हो। तुम्हारे पिता जी ने कहा-प्रकाश ! क्यों ऐसे अधीर होते हो। अब तो दिन है, कहीं न कहीं तो अच्छी जगह पहुंच जायंगे। वहां भी बस्ती, दूकान होगी ही। जहां रहेंगे वहां सब कुछ मिल जायगा। अन्यथा छोले तो कहीं गये नहीं, वहां भी मिल जायंगे। अब तुम दोनों चल पड़े। जहां तुम को दो पहर होवे वहां अच्छी जगह है। धर्मशाला है, कुआं है, ठण्डा पानी है, दूकान है। पर गये तो देखा, दूकानदार नहीं है। दूकान बड़ी बढ़िया है लेकिन बन्द है। कोई तुम्हारी तरह यात्री खड़ा था। उस ने कहा यह दूकानदार सब तरह का सामान रखता है। पूरी आदि भी बनाता है। फल, मेवा, दूध भी होता है। पर कल से अपने गांव गया है। इस का कोई बीमार था। वापिस आया नहीं। अब बोलो ! तुम इस समय अपने पेट की क्षुधा-निवृत्ति के लिये क्या करोगे ?

प्रकाश—बस अब ठंडा पानी पीकर शान्त हो कर सो रहेंगे।

महात्मा—बस यही हाल है यज्ञ का। शरीर भी एक यज्ञशाला है। पेट इस का हवन कुण्ड है। इस में शरीर के देवताओं (इन्द्रियों, मन) की तृप्ति के लिये जो अन्न ग्रास ग्रास कर अन्दर डाला जाता है वही आहुति होती है। शरीर में देवता, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं। यही ग्रहण करते हैं। और

इन की तृप्ति पर तुम्हारे शरीर की तृप्ति और हर प्रकार की बढ़ती और बल आता है।

ब्रह्माण्ड में जो देवता हैं वे असली देवता हैं। ब्रह्माण्ड शरीर है और वे देवता इसकी इन्द्रियां और मन आदि हैं और यह पिंड इस ब्रह्माण्ड की नकल है। इनके स्थानापन्न देवता इस शरीर में हैं। जैसे तुम्हारे शरीर में उन देवताओं का स्वामी जीवात्मा है। इन को दी हुई आहुति आत्मा के लिये है और आत्मा के द्वारा ही वे ग्रहण कर सकती हैं और आत्मा की प्रसन्नता होती है। इसी तरह इस ब्रह्माण्ड रूपी शरीर के देवताओं का आत्मा यही परमात्मा है। उन को दी हुई आहुति परमेश्वर के निमित्त हो जाती है और वह परमात्मा की प्रसन्नता से हमें हर प्रकार की शक्ति और सम्पत्ति से बढ़ाते हैं। मैंने तुम को पहले समझाया था कि यज्ञ का असर इस प्रकृति पर क्या होता है और आत्मा पर क्या होता है? यज्ञ का अंग अंग किस तरह ब्रह्मांड के अंग अंग का प्रतिनिधि है?

हवन सामग्रीः—

अब मैं तुम को महाराज जनक और ऋषि याज्ञवल्क्य की कथा सुनाता हूं। (बृहदारण्यक उपनिषद्)।

राजा जनक—हे याज्ञवल्य ऋषि! तुम जानते हो, अग्निहोत्र का स्वरूप क्या है?

याज्ञवल्क्य—"हे राजन्, मैं जानता हूं।"

राजा—"वह क्या है?"

ऋषि—"महाराज! दूध ही अग्निहोत्र है अर्थात् दूध द्वारा

अग्निहोत्र सर्वोत्तम प्रकार से किया जा सकता है।"

राजा—"अगर दूध ही परम साधन है अग्निहोत्र का, और दूध न मिले तो किस वस्तु का होम करोगे ?"

ऋषि—"चावल और जौ के द्वारा।"

राजा—"चावल और जौ भी न हों, तो ?"

ऋषि—"जो दूसरी ओषधि है, उस के द्वारा।"

राजा—जो दूसरी ओषधि न हो, तो किस के द्वारा करोगे ?"

ऋषि—जो जंगली ओषधियां होती हैं, उनके द्वारा।

राजा—"जंगली ओषधियां न मिलें तब ?"

ऋषि—"वनस्पतियों द्वारा होम करूंगा।"

राजा—"जब वनस्पतियां न होंगी तब ?"

ऋषि—"जल द्वारा।"

राजा—जब जल भी न होगा तो किस के द्वारा करोगे ?"

ऋषि—निश्चय कर के बोला, "जब यहां कुछ भी न था तब भी होम किया ही गया था।" "कैसे ?" "श्रद्धा की अग्नि में सत्य को डाला गया था।"

यह सुन महाराज जनक ने प्रसन्न हो कर कहा, "तुम्हें मैं सौ गायें देता हूं।" कितना उत्तम संवाद है ! सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं। अग्निहोत्र नित्य करना चाहिये, केवल श्रद्धा और सत्य चाहिये।

अब तुम समझ गये, जैसे शरीर के लिये अन्न की आहुति आवश्यक है वैसे ब्रह्मांड के लिये अग्निहोत्र। परन्तु अग्निहोत्र में अपनी अपनी अवस्था के अनुसार, देश कालानुसार श्रद्धा से आहुति देनी चाहिये। धनी आदमी है तो इस शक्ति से, ग़रीब है तो इस सामर्थ्य से। पूर्वकाल में ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी वनों में रहते थे। गृहस्थियों की तरह उन के पास अन्न-धन तो अपना होता नहीं था। वे देश की सम्पत्ति समझे जाते थे और शक्ति का साधन समझे जाते थे। अब उन्होंने अग्निहोत्र तो प्रातः व सायं अनिवार्य तौर पर करना है। किस से जाकर घी, सामग्री मांगते फिरें ? वे वन की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति जानते थे। गौएं उन के पास होती थीं। चरागाहें आम थीं। ओषधियां, जड़ी-बूटियां अनेक थीं। फल-फूल मेवा और भांति भांति के लाभदायक वृक्ष भी होते थे। उन्हीं से वे नित्य हवन करते थे। और जो भी ब्रह्मचारी गुरु के पास पढ़ने आता था, चाहे राजा का हो चाहे रंक का, वे अपने हाथ में तीन समिधाएं लाया करते थे और गुरुचरणों में रख देते थे। और बड़े बड़े यज्ञ गृहस्थी लोग उन से कराते थे, शहरों में और उनकी कुटियाओं पर भी जैसी जैसी आवश्यकता होती थी। उस ज़माने में यही लोग वानप्रस्थी, मुनि और ऋषि ब्रह्म-वेत्ता होते थे।

तीन समिधाएं, विद्या के सच्चे आदर्श की सूचकः—

भक्त जी—महाराज ! तीन समिधाएं क्यों हाथ में ले जाते थे ? एक न ले गये या गठरी बांधकर न ले गये कि आगे को चुननी न पड़ेंगी, काम आयेंगी।

महात्मा—इस का प्रकरण तो हवन में ही आ जावेगा। वहां भी तो आप तीन समिधाएं अग्नि को पहले भेंट करते हैं, पीछे घी सामग्री से हवन करते हैं। अच्छा, यहां का जो भाव है वह समझ लीजिये।

जब समिधा अग्नि में डाली जाती है तो वह जल उठती है, अग्निरूप हो जाती है। समिधा में छिपी अग्नि उद्भूत हो जाती है, प्रदीप्त अवस्था में आजाती है। इसी लिये वैदिक काल में जिज्ञासु लोग समित्पाणि हो कर अर्थात् समिधा हाथ में लेकर गुरु के पास आया करते थे। अपने को समिधा बनाकर गुरु के लिये अर्पित कर देते थे जिस से कि वे अपने गुरु की ज्ञानाग्नि में प्रदीप्त हो जायं। भौतिक अग्नि के लिये अपनी काष्ठ की समिधा और शिष्य रूप में आचार्याग्नि के लिये अपने शरीर, मन, आत्मा के प्रदीपन के लिये तीन समिधाएं होती हैं। समिदाधान के मन्त्रों में भी पहली समिधा आत्मा का रूप, दूसरी मन में श्रद्धा, पवित्रता का रूप, तीसरी शरीर की नीरोगता का रूप वर्णन करती है। अग्निकुण्ड के ऊपर मन्त्र के उच्चारण के साथ जो क्रियात्मक रूप में व्याख्या होती है इस का चित्त के ऊपर तुरन्त प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। अर्थ चाहे भूल जायं पर भाव और दृश्य सामने रहता है। इधर तुम्हें और रूप में बतलाऊंगा। अच्छा अब प्रकाश! कोई क़सर है? अभी समय है, तर्क कर लो अन्यथा हम अब बाहर जाते हैं। हवन का समय निकट आने वाला है।

प्रकाश—नहीं, महाराज! बस अब कृपा आप की हो गई। इन तीन समिधाओं ने मुझे यह भी बतला दिया। शोक! वह युग

सनहरा युग हम खो बैठे। आज कल तो स्कूलों और कालेजों में पढ़ाने का और पढ़ने का भाव ही बदल गया। ओह! कितना उच्च आदर्श, कितनी उत्तम श्रद्धा शिष्य को अपने गुरु के प्रति होती थी। ईश्वर अब वह ज़माना लावे तो भारत का बेड़ा पार हो जावे।

छठी झांकी

याजक—सायंकाल के हवन का समय है। भक्त जी के गृह का आंगन बड़ी सुन्दरता और सफ़ाई से लीपा-पुता हुआ है और वेदी पर सब प्रकार का सामान ढंग से जुटा रक्खा है और सब अपनी अपनी जगह पर बैठ रहे हैं। इतने में वह साहब भी आ गये।

महात्मा—लो, वे हमारे मित्र भद्र पुरुष (ज़ैन्टलमैन साहिब) भी आ गये।

जैन्टलमैन—"महराज, क्षमा करें। ऐसा न बुलाया करें।"

महात्मा—"जैन्टलमैन कोई बुरा शब्द है ?"

जैन्टलमैन—"नाम तो बड़ा उत्तम है। नाम नहीं, यह पदवी है। परन्तु स्वर, स्वर में भी (बोलने के ढंग में भी) भेद होता है। मैं तो अवश्य आप के भाव से ही बुरा अनुभव कर रहा हूं। मेरा नाम धनराज है। कृपा कर के इस नाम से ही पुकारा करें।"

महात्मा—"बहुत अच्छा। अशिष्टता क्षमा कीजिये।"

धनराज—"आज तो मुझे अवसर दीजिये। मैं ही यजमान बनूं।"

भक्त ज़ी—"आइये बड़ी ख़ुशी से। आप का ही घर है।"

महात्मा:—"आप रुष्ट न हों तो मैं कह दूं।"

धनराज:—निःसन्देह, बड़ी प्रसन्नता से।"

महात्मा:—"आप यजमान नहीं बन सकते!"

धनराज:—"क्यों?"

महात्मा:—आपने पतलून पहनी हुई है। पता नहीं कि आप के गले में यज्ञोपवीत भी है या नहीं?"

धनराज:—"क्या पतलून, पाजामे से हवन करना मना है? और यज्ञोपवीत के बिना भी नहीं कर सकता?"

महात्मा:—"आप कहें तो मैं पहले समझा दूं और फिर हवन करूं। अन्यथा हवन कर के समझाऊं।'

धनराज—"हां, समझाने में हवन को देर हो जायगी। आप हवन कर लेवें पर आज हवन के सम्बन्ध में न समझावें क्योंकि आप बहुत देर लगा देंगे। पहले मुझे ही इन बातों को समझा देवें।"

महात्मा—बहुत अच्छा, आप तब तक मिल कर बैठे रहिये।

सब से पहले प्रार्थना होती है। प्रार्थना के बाद महात्मा जी से भक्त जी ने विनय की कि कुछ मुखारविन्द से उपदेश भी सुनावें। महात्मा ने कहा—"भक्त जी! व्याख्या तो आज मना हो गई

है पर आप को यह बतलाये देता हूं कि यज्ञ एक ऐसी चीज़ है जो मनुष्य की ज़ामिन (प्रतिभू) है। यज्ञ करने वाले मनुष्य का कोई भी मनुष्य या देव अनिष्ट नहीं कर सकता। जैसे यज्ञ के अक्षरों य-ग्-य को उलटाने से कोई नहीं उलटा सकता। ऐसे ही जो याजक यज्ञरूप हो जाय, यदि कोई उसके विपरीत चले, उस को हानि पहुंचाने की सोच में रहे, तो उसके काम को कोई नहीं उलटा सकता।

देखो! यह अग्नि इसकी साक्षी देती है (तीली जला कर) इस तीली की आग ऊपर को जा रही है। मेरी उंगली ने इसे अब उलटा दिया। अब भी यह ज्वाला नीचे को नहीं जाती। वह ऊपर ही जाती है और मेरी उलटने वाली उंगली को जला रही है (सब देख कर हंस पड़े) ऐसे ही जो आदमी याजक की हानि करना चाहता है, उसे आपत्ति में डालता है, उसे नीचे गिराना चाहता है, वह स्वयं ही हानि उठाता और भस्म हो जाता है।

ऋग्वेद में एक मन्त्र है जिसका अर्थ है कि हमारे किये हुए यज्ञ कोई सफलता नहीं देते, इसलिये कि हम रीति और प्रीति से नहीं करते, न श्रद्धा न विधि सहित। इसलिये जहां यज्ञ सब कुछ का देने वाला है वहां यज्ञ दुश्मन भी है। **'नास्ति यज्ञसमो रिपुः'** यज्ञ के समान दुश्मन कोई नहीं। जैसे अग्नि से मख़ौल करने पर उस की चिनगारी हमारा सब कुछ भस्म करने के लिये काफ़ी है, ऐसे यज्ञ अश्रद्धा से किया हुआ हानि भी करता है। इस के सम्बन्ध में मैं पीछे युक्ति से समझाऊंगा। इस वक्त प्रमाण देता हूं। धन्तराज जी! आप भी ध्यान से सुनिये:—

[१] रामायण बालकण्ड [२] मुण्डक उपनिषद् खण्ड २, वाक् [३] विधिहीनस्य यज्ञस्य कर्ता विनश्यति अर्थात् शास्त्रों की विधि के अनुसार यज्ञ न करने वाला जल्दी नष्ट हो जाता है। जिस गृहस्थी के घर अग्निहोत्र, अमावस्या का यज्ञ नहीं होता; जो पूर्णमासी का यज्ञ, चतुर्मास का यज्ञ, और शरद ऋतु का यज्ञ नहीं करता, जो अतिथि-सत्कार नहीं करता है, जो समय पर अग्निहोत्र नहीं करता है, जिसके घर बलिवैश्वदेव यज्ञ नहीं होता, जो विधि के विपरीत हवन करता है, उसके सात लोक नष्ट हो जाते हैं। "सात लोक" [१] अन्तःकरण की शुद्धि [२] वैराग्य [३] अन्तःकरण की स्थिरता [४] ईश्वर की उपासना [५] दुःख से दूरी [६] आनन्द की प्राप्ति [७] मुक्ति-परन्तु अब हवन को देर होती है, सो हवन शुरु करें।

हवन हो चुका। प्रार्थना और भजन आदि होकर निवृत्त हो गये। अब धनराज जी बोले "महाराज! धोती और यज्ञोपवीत पहने बिना यज्ञ करने का मुझे अधिकार क्यों नहीं है?

महात्मा—हां, सुनो भाई! पाजामा-पतलून भी पहनने की चीज़ है और धोती भी। समय समय के ऊपर हरेक वेष नियत है। धर्म दो प्रकार का होता है-एक चिह्नात्मक धर्म, दूसरा क्रियात्मक धर्म। तुम ख़ुद ही बोलो कि बर्तानिया की सरकार के झण्डे का फरेरा कितने लाख रुपये का है?

धनराज—"मामूली पैसों का।"

महात्मा—अगर इसे कोई गिरा देवे, तो क्या होगा?

धनराज—युद्ध, गिरफ़्तारी, फ़ौजी मार्शलला।

महात्मा—अगर कोई समाज मन्दिर का झण्डा या सिक्ख अकालियों का या मसजिद का झण्डा गिरा देवे ?

धनराज—रक्तपात, लट्ठबाज़ी (दण्डादण्डि), वैर-विरोध, लूटमार, मुक़दमा-बाज़ी।

महात्मा—क्या लोग फिर अपने झण्डे का फरेरा पैसों से ख़रीद नहीं सकते ?

धनराज--भगवन्! यह तो चिह्न है। इसी में तो महत्ता है शासन की, समाज मन्दिर की, सिक्ख धर्म की, गुरुद्वारे की।

महात्मा – यही चिह्नात्मक धर्म कहलाता है। अब बतलाओ! अगर कोई सिपाही वर्दी के बिना किसी को पकड़ना चाहे या किसी के घर की तलाशी लेना चाहे और वह इन्कार कर देवे या लड़ पड़े तो बतलाओ कि क्या सिपाही की तरफ़ से सरकार मुद्दई बनेगी या हस्ताक्षेप का मुक़द्मा हो सकता है ?

धनराज—नहीं, क्योंकि वह सरकारी ड्यूटी के समय अपनी सरकारी वर्दी में नहीं था।

महात्मा – वर्दी तो सिपाही नहीं, किन्तु वर्दी के बिना सिपाही सिपाही होने का अधिकार न रखने से बलहीन होता है। वर्दी से दुर्बल सिपाही को इतना बल आ जाता है जितना कि कप्तान को है। एक सिपाही नियत वेष में लाहौरी सड़क पर खड़ा हाथ के इशारे से जज की, कमिश्नरी की, अथवा करोड़पति की मोटर को जितनी देर चाहे, ठहरा सकता है। यज्ञोपवीत शब्द यज्ञ का अधिकारी बनाने का विद्या का चिह्न है, द्विज बनने की निशानी

है। ये मामूली तीन तारें नहीं बल्कि इस में गहरा रहस्य है। वह कभी यज्ञोपवीत के संस्कार में समझ लेना।

रीति, नीति और प्रीतिः--

हवन में यज्ञ की पवित्र वेदीके ऊपर कैसे बैठो, कैसे आहुति दो, कौन कौन पात्र कैसे रक्खो, कहां कहां रक्खो, सब निश्चित हैं। यज्ञ की विद्या पृथक् विद्या है। यह मत समझना कि अगर चौकड़ी मार न बैठा, तो न बैठा सही। लात पर लात या घुटने टेक, या एक ज़ानु खड़ा एक ज़मीन पर, या बर्तन दायें न रखा बायें रख दिया, आहुति दायें हाथ से न दी बायें से दे दी। सब विधि अपने अधिकार में नहीं है। तुम को मालूम होगा कि एक सरकारी मैम्बर अंग्रेज़ असैम्बली में श्रीमान् मिस्टर पटेल (स्वर्गवासी) प्रैज़िडैन्ट असैम्बली के दरवाज़े से गुज़र कर अन्दर गया था, तो उसका जवाब मांगा गया था कि क्यों वह प्रैज़िडैन्ट के दरवाज़े से गुज़रा। सरकार को क्षमा मांगनी पड़ी थी। अन्यथा दरवाज़े से गुज़रने में क्या बिगड़ गया था? विधि के विरुद्ध होने से वह अपराध था। कोई वकील हाईकोर्ट में पेश नहीं हो सकता, नहीं बोल सकता जिसको हाई-कोर्ट ने अधिकार (लाइसैन्स) न दिया हो और कोई भी अधिकारी वकील अन्दर पेश नहीं हो सकता जब तक कि उसने गौन (Gown) पहना हुआ न हो। कोई गौन पहने वकील उर्दू में वहां बातचीत पेश नहीं कर सकता। वह इसलिये कि काम चलाने के लिये, कि इसमें कोई विघ्न न आवे, एक विशेष नियम नियत कर दिया है। इसका नाम है कानून—संगति करण। यज्ञ का अर्थ एक सगति करना भी है। वह आगे बतलाऊंगा। ये सब बातें तुम को आज ही इसलिये वह दी हैं कि कहीं तुम फिर आक्षेप करने लग जाओ—

बर्तनों के ऐसा रखने की क्या ज़रूरत ? ऐसी आहुति देने का क्या अर्थ ? और क्यों न हम अपनी भाषा में आहुति देवें, संस्कृत भाषा में क्यों बोलें ? यह सब मैंने स्वयं पहले ही इसलिये बता दिया कि तुम कहीं शंका न करने लगो।

धनराज—बड़ी कृपा महाराज ! फिर कल का हवन मेरे घर पर हो। मैं तैयारी करूंगा।

सातवीं झांकी

कर्मकाण्ड—आत्म दृष्टि—

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

अर्थ—हे [अमृत] सुखप्रद जल ! तू [उपस्तरणम] प्राणियों का आश्रयभूत (असि) है । यह हमारा कथन शोभन हो ।

(२) ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

अर्थ—हे (अमृत) अमृत ! तू (अपिधानम) निश्चय पोषक [असि] है ।

(३ ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।

अर्थ—हे [मयि] मुझ में [सत्यम] सचाई [यशः] कीर्ति [श्रीः] शोभा [श्रीः] लक्ष्मी [श्रयताम्] स्थित हो ।

आज प्रातःकाल धनराज के घर में यज्ञकी तैयारी हुई हुई है । यज्ञशाला ख़ूब सजाई हुई है । आसन बिछे हुए हैं । अब महात्मा जी की प्रतीक्षा है । भक्त जी अपने सारे परिवार और महात्मा जी को लेकर धनराज जी के घर में आ गये । धनराज जी ने शिष्टाचार के अनुसार सबका सत्कार किया और सब बैठ गये ।

महात्मा—यजमान जी ! अब आप सावधानी से काम लेवें । उचित निर्देश तो आप पहले दिन सुन ही चुके हैं । अब ध्यान से कार्य करें ।

धनराजः—महाराज! पहले आप सामान देख लेवें। किसी और चीज़ की ज़रूरत हो तो पहले ही से धरा दूं। आप कहते हैं कि फिर बोलना-चालना नहीं होता। महात्मा जी ने दृष्टि डाली और कहा—एक आटे का दीपक बनाओ। उसमें बत्ती और घी जलाओ। एक छोटा पात्र रख दो। उसमें छोटी छोटी लकड़ियां चुन दो ताकि अग्नि बनाई जावेगी और समिधा भी अपने पास मंगा कर रखवा लो। सामग्री में घी मिलाकर जिन जिन सज्जनों ने आहुति देनी है उनके पास रखवा दो। आचमन के पात्र सब के सामने हों और सब जन आचमन करें, जो वेदी के ऊपर बैठे हों।

धनराज ने अपने नौकर से कहा, लकड़ियां ले आओ। नौकर ने लकड़ियां उठाईं और ज़मीन पर दे मारीं। कई रास्ते में गिरती आईं।

समिधा अग्नि की आत्मा हैः--

महात्मा—देखो तुमने लकड़ियां कहीं। नौकर ने लकड़ियों जैसा वर्ताव किया। अगर तुम हवन समिधा कहते तो वह श्रद्धा से लाता। यह समिधा क्या है? अग्नि की आत्मा है। इसका निरादर करने से यज्ञ की अग्नि का निरादर करना है। इसको भी सामग्री की तरह टोकरी में, शुद्ध पात्र में धरना चाहिये। जितना तुम श्रद्धा से काम लोगे उतना तुम्हारा बल बढ़ेगा।

धनराज---तो क्या महाराज! यह जड़ पूजा न होगी? लकड़ी तो जड़ है ही।

आत्म-दृष्टि और जड़-दृष्टि---

महात्मा---जड़ तो है, पर हवनकुण्ड भी तो जड़ है। इस

पर अब जूती नहीं आ सकती। तुम्हारी पगड़ी को अगर कोई जूतियों पर रख दे तो तुम को बुरा लगेगा या न?

धनराज—लगेगा।

महात्मा—क्यों? वह भी तो जड़ । याद रक्खो तुम जिस चीज़ को जड़त्व के भाव से देखोगे वह तुम्हारी जड़ता को बढ़ा देगी। वेद का अर्थ समझने के लिये न केवल वेदमन्त्रों का विशेष दृष्टि से और विशेष पद्धति से अर्थ जानने की आवश्यकता है परन्तु सृष्टि को और भी विशेष आत्मिक भावना से देखने की अत्यन्त आवश्यकता है। सर्वसाधारण लोगों को सृष्टि की तरफ़ जड़दृष्टि से देखने का अभ्यास आज कल हो गया है। यही अभ्यास अत्यन्त घातक है। जब तक जनता में जड़ दृष्टि रहेगी तब तक उन से वैदिक दृष्टि का अभाव ही रहेगा। परमात्म-शक्ति का जो विकास इस प्रकृति में हो गया है वह ही सृष्टि है। इस दृष्टि को आत्मदृष्टि कहते हैं। जड़दृष्टि के लोग अपने शरीर को और भी जड़ भाव से देखते हैं। हड्डी, मांस, चमड़ा आदि उन को इन जड़ पदार्थों के अतिरिक्त कोई श्रेष्ठ पदार्थ शरीर में भास नहीं पड़ता। दूसरे ज्ञानी सुविज्ञ लोग इस शरीर को चैतन्य-दृष्टि से देखते हैं। वे समझते हैं कि हर एक अंग अंग में चेतनशक्ति विद्यमान हो कर काम कर रही है और इस दृष्टि से ही वेद के अर्थों को जानना चाहिये। धनराज तो चुप हो गया। परन्तु दलपत बोला कि वेद में ऐसा कहां लिखा है कि लकड़ी अग्नि की आत्मा है और ऐसा सत्कार करना चाहिये।

महात्मा—तुम वेद पढ़े हो? कौन सा वेद पढ़ा हुआ है?

दलपतराय—पढ़ा तो एक भी नहीं, पर बुद्धि जो नहीं मानती।

महात्मा—तुम ने कभी वेद की शक्ल भी देखी है ?

दलपतराय—नहीं महाराज ! कभी ऐसा अवसर नहीं मिला।

महात्मा—तभी ऐसी डींग पर बेटा ! वेद वेद का नाम पुकारते हो। हवन कभी किया है ?

दलपतराय—मैं तो प्रतिदिन करता हूं। कभी नागा नहीं करता।

महात्मा—कुछ इस का असर भी हुआ ?

दलपतराय—और असर क्या होना है। कर्तव्य है आर्यों का।

महात्मा—तुम रोटी खाते हो, पानी पीते हो, आग सेकते हो, पंखा करते हो, नहाते हो, सर्द गर्म चीज़ खाते हो; इन का असर होता है या नहीं ?

दलपतराय—सब का तुरन्त होता है।

महात्मा—तुम फिर कैसे कहते हो कि मैं हवन करता हूं। क्या प्रतिदिन नींद में किया करते हो या जागते हुए ?

दलपतराय—कभी नींद में भी हो सकता है ?

महात्मा—जैसे बच्चे नींद में दूध पीते और रोटी खाते हैं स्वप्न में आदमी सब काम काज करता है। सौदा तोल कर

दिया और रुपये लेकर गोलक (गल्ले) में डाल दिये । जागने पर क्या देखा कि न सौदा विका है, न रुपये हैं । प्यारे ! यही तुम्हारा हाल है । देखो :—

समिदाधान--(१) ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेद-स्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय । चास्मान् प्रजया पशुभि-र्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ।१।

(२) ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ।

(३) ओं तंत्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा । इदमग्नये अङ्गिरसे इदन्न मम ।

सब से पहली समिधा जब तुम अग्नि की भेंट करते हो तो तुम पहला मन्त्र पढ़ते हो । हे अग्ने ! यह [इध्म] समिधा तेरी आत्मा है । जैसे समिधा से अग्नि हर प्रकार बढ़ती है ऐसे हे ईश्वर ! यह [मैं] जीवात्मा तेरी आत्मा है, इसे भी बढ़ाओ । दूसरी समिधा जब तुम देते हो, तो कहते हो—'समिधाग्नि दुवस्यत घृतै बोंधयतातिथिम् ' इस में शब्द है ' अतिथिम् ' । अतिथि के समान इस अग्नि को समझ कर आहुति दो, श्रद्धा आदर से जैसे अतिथि का सत्कार किया जाता है । और अगले मन्त्र में ' सुसमिद्धाय ' शब्द है जिस से स्पष्ट प्रकट है कि समिधा सुन्दर

हो, उत्तम हो, पवित्र हो, मैली न हो, गन्दी जगह से न ली गई हो, दुर्गन्धित न हो, सुगन्धित हो, दीमक से खाई हुई न हो, जैसा पहले दिन बतलाया गया है । अब तुम बतलाओ कि जो वस्तु पवित्र है उसे गन्दे स्थान पर रक्खोगे ? या गन्दे तरीके से वर्ताव करोगे ? वेद मन्त्र तो आप ही आप अपनी रीति और प्रीति के नियम को बतला रहे हैं । हम न समझें तो हमारा अपना दोष है । इसलिये तो वेदमन्त्र में रीति से सब आहुति दी जाती और क्रिया की जाती है । अन्यथा ऐसे ही घी सामग्री से हरेक हवन न कर लेता ?

दलपतराय--बहुत .खूब ! हम तो इतने समय तक हवन करके लाभ न उठा सके । भिश्ती हो कर प्यासे ही रहे ।

मन्त्र उच्चारण—

महात्मा ने प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण को बड़े मीठे स्वर से पढ़ने की सब को आज्ञा देते हुए निवेदन किया कि जो मन्त्र जानते हैं, शुद्ध बोल सकते हैं वे मेरे साथ साथ पढ़ें । आगे कोई न बढ़े । जब एक मन्त्र समाप्त हो तो झटपट कोई 'ओ३म्' न कह देवे । मेरे 'ओ३म्' कहने पर आप फिर दिल में धीमा कह कर मन्त्र का साथ देवें । इस से यह लाभ होता है कि अगर कोई पीछे भी रह गया हो तो मिल जाता है और एक आदमी के ज़ोर से 'ओ३म्' उच्चारण करने से सब का स्वर मिला रहता है । मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है । वैसे आगे पीछे हो कर यज्ञ के मन्त्रों के मङ्गल पाठ को नीरस कर देते हैं । और जो नहीं पढ़े हुए वे ध्यान लगा कर सुनते रहें । और जो अशुद्ध पढ़ते हैं वे पुस्तक हाथ में ले कर साथ साथ सुनते जायं । जब यह सब हो गया तो

महात्मा जी ने आचमन और अङ्गस्पर्श के मन्त्रों से आचमन और अङ्गस्पर्श की क्रिया कराई । एक पात्र में मोटी मोटी समिधाएं चुन कर रक्खीं । अग्न्याधान मन्त्र बोल कर काफ़ूर को दीपक से लगा कर इस में रख दिया । थाली को यजमान के हाथ में दी फिर दोनों यजमान और आप भी थाली को पकड़ कर खड़े हो गये और **ओं भू-र्भुवः स्वः । ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव**..................मन्त्र पढ़ कर वेदी में वह अग्नि बड़ी श्रद्धा से छोड़ दी । लोग देख कर हैरान हो गये कि यह महात्मा जी ने क्या किया ? इतनी पूजा, इतनी श्रद्धा ! ये तो आर्यसमाजी मालूम नहीं होते । कई एक कट्टर आदमी सहन न कर सके और उठने लगे । महात्मा ताड़ गये और पूछा—सज्जनो ! क्यों जाते हो ? कोई वेद-विरुद्ध बात देखी ?

सज्जन—हांजी ! यह वेद विरुद्ध ही नहीं बल्कि पाखण्ड है । आप हमें पौराणिक मालूम होते हैं ।

महात्मा— अच्छा भाई ! तुम जैसा कहो, ठीक होगा । पर यह तुम्हारा कर्तव्य आर्यत्व को कलङ्कित करने वाला है । आर्य-पुरुष धीर, गम्भीर और विचार शील होते हैं । तुम को अगर मैं किसी शास्त्र का प्रमाण दे दूं, तो ?

सज्जनगण—हम किसी भी शास्त्र को अन्धा-धुन्ध न मानेंगे । आप अर्थ कुछ के कुछ लगा देवें ।

महात्मा—आप को कहां का प्रमाण चाहिये ?

सज्जनगण— ऋषि दयानन्द की किसी पुस्तक से दिखा दो तो हम आप को यहां यज्ञ कराने देगें । अन्यथा या हम स्वयं

उठ जायेंगे या धनराज को कहेंगे कि बन्द करदो।

धनराज—मेरे आर्य लोगो! मैं ने भी भक्त जी के गृह पर ऐसी ही तेज़ी की थी। मैंने जब इन की व्याख्या सुनी, पछताया। आप को भी पहला दिन है, इसलिये आप को पता नहीं। आप को वे ज़रूर दिखला देंगे। मेरे गृह पर रचाये यज्ञ में विघ्न न पड़े, मैं हाथ जोड़ क्षमा मांगता हूं। यज्ञ को होने दीजिये। आप धीरज से सुनते रहें। फिर सब शंकाएं मिटा लेना।

सज्जनगण—बहुत अच्छा। घर वाले की ऐसी इच्छा है तो फिर हमें क्या?

महात्मा—धनराज जी! अपने गले का बटन खोल दो। मन्त्र जब स्वर से बोला जाता है तो गर्दन फूलती है। बटन से तंगी होती है और नाड़ियों को नुक़सान पहुंचता है।

आचमन मन्त्रों का रहस्यः--

इस हवन का आरम्भ तुम्हारे आचमन से हुआ है। तीन मंत्रों से तीन आचमन करें। विधि यह है कि दायें हाथ की हथेली पर इतना जल लेवें जितना उसके मध्यवर्ती भाग में समा सके और कण्ठ तक भी पहुंच सके, सुड़कने [सूत्कार] की आवाज़ न आवे। आचमन के तीन मन्त्रों से केवल यह ही मतलब नहीं है कि तुम मन्त्र पढ़ कर पानी पी लो। इन मन्त्रों में भी रहस्य है। प्रथम मन्त्र में "ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" कहा। इसका अर्थ है—हे अमृत जल! तू आच्छादन हो। दूसरा "ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा" हे जल! तुम ढकने हो। तीसरा "ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा"—हे अमृत जल! तुम सत्य, यश, शोभा और सम्पत्ति हो।

अब हवन करने वाले को इन अर्थों में कोई रस नहीं आता। जैसी इच्छा हुई, कल्पित तौर पर शर्त पूरी कर ली। सर्दी हुई तो अन्दर से झिझकता रहा और चट्टी चुकाई। गर्मी हुई तो भर कर चुल्लू पी लिया और उसे न तो कफ़ निवृत्ति का लाभ हुआ, न रस आया। अब मैं तुम को पहले इस का यह ज्ञान कराता हूं।

जल सहारा-जीवन आधार और सर्व होम औषधिः—

हमारे ऋषियों मुनियों ने आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक विद्या को बचपन से ही अनायास बालकों के बुद्धिगत करा देने का यही एक तरीका आठ साल की आयु से सन्ध्या, गायत्री और यज्ञ का जारी किया था। अब तुम से ही कहलवाता हूं।

महात्मा—"तुम्हारा जो रहने का आश्रय स्थान है वह क्या है और वह किस पर स्थित है ?

धनराज—पृथ्वी पर और पृथ्वी जल के आश्रय पर स्थित है। इसके नीचे जल है।

महात्मा—इसी को उपस्तरण (आच्छादान) कहते हैं। अब जो तुम्हारे जीवन का आधार है वह क्या है ? वह किस से उपजता है ? और वह क्या है, कहां से आता है ?

धनराज—हमारे जीवन का आधार अन्न है और ऊपर की वर्षा के जल से पकता है। जल अन्तरिक्ष से बरसता है।

महात्मा—इसी का नाम अपिधान—जल का ढकना-है। अब तुम समझे, हमारे ऊपर और नीचे पानी है। इसी तरह हर एक पृथ्वी, चन्द्र, तारा, सूर्य आदि जितने भी लोक हैं, उन के ऊपर और नीचे पानी है। इतना ज्ञान होने के बाद अब हम को

देखना है कि इसका नाम अमृत क्यों है ? जिन कारणों से मृत्यु होती है उनके दूर करने वाला हो जाने से अमृत बन जाता है। मनुष्य की मृत्यु रोग से होती है। रोगनिवृत्ति औषधि से होती है। वेद भगवान् ने इसके प्रभाव को इस प्रकार कहा है "जल में अमृत है, जल सर्वहोम औषधि है। मन्त्र-'आप: सर्वस्य भेषजम्...............इत्यादि। [२] जल सब रोगों का नाश करने वाला है। वह तुम्हारे लिये औषधि भी है। [३] जल सब रोगों को नाश करता है। स्थिर रोगों से वह तुम को सुरक्षित करे। अब सिर्फ़ ऐसा समझ लेने पर तो रोग दूर नहीं हो सकते, जब तक तुम वस्तुत: यह न समझलो कि दवा है। एक बीमार बिस्तर पर पड़ा है। दूसरा आदमी वैद्य से, डाक्टर से दवाई लाता है। वह पानी की आकृति बोतल या कौल में है। परन्तु रोगी को विश्वास है कि यह दवाई है और डाक्टर से आई है। मेरे ही रोग की दवाई है। तब वह दवाई उसे लाभ देती है। अगर रोगी इस में सन्देह करे कि पता नहीं दवा भी है या कि पानी देकर पैसे बटोर लिये हैं या कोई और की और दवाई न दे दी हो, तो रोगी को वह दवाई कभी भी लाभ नहीं करेगी चाहे योग्य डाक्टर की हो इसलिये विश्वास का होना अनिवार्य है।

विश्वास और श्रद्धा से बल बढ़ता है। बल वाला मनुष्य जिस प्रकार संकल्प करता है वही पूरा होता है। इच्छा-शक्ति (Will power) एक बड़ी चिकित्सक है और जितनी भी औषधियाँ पैदा होती हैं उनका प्राण जल है। हर जल में जहां जहां का वह है उस में वहां के गुण होते हैं। वर्षा का पानी, कुएं का, तालाब का, समुद्र का, पहाड़ का, अपना अपना असर

रखता है। किसी पानी से मनुष्य को ज्वर [बुख़ार] हो जाता है, किसी पानी से दस्त। किसी से कब्ज़ हो जाती है। कई एक पानी से रोग ऐसे ही दूर हो जाते हैं। मनुष्य अपने विकट रोगों को दूर करने के लिये जलवायु का परिवर्तन करते हैं। उसी से ठीक हो जाते हैं। जलवायु दोनों सर्व ओषधि हैं। अब जल को सर्वहोम ओषधि (जितनी चीज़ें हवन के काम आती हैं, चाहे वे मनुष्य की हों या देवता की उनका पिता जल है, इसलिये सर्व होम ओषधि नाम है) कहा गया है। यह होम ओषधि अमृत कहलाती है।

आचमन विधि---

पानी को हाथ की हथेली पर इतना ही रक्खो जितनी इस में निचाई है और अपनी आंख इस पानी में रक्खो और मन्त्र पढ़ते हुए अपनी प्रबल शक्ति से इच्छा करो-हे अमृत जल! तुम आच्छादन हो। मेरे सब पापों, रोगों और मलिनताओं को ढक कर शुद्ध करो। दूसरा-हे अमृत जल! तुम ढकने हो। मेरी बुरी कामनाओं और विचारों को आच्छादित करो। यह केवल एक नमूना है। जिस जगह, जहां पर कोई रोग हो वहां पहुंचा कर इस बीमारी को दूर किया जा सकता है। शारीरिक रोगों को स्थूल पानी से और मानसिक रोगों को जल के गुणों को धारण करने से दूर किया जाता है। पर जो आदमी एक सैकण्ड में आचमन कर लेवे उस पर न बाह्य प्रभाव होता है और न आन्तरिक। न उसे किसी विद्या का ज्ञान होता है। मनुष्य के शरीर में बहुत भाग जल का है। इसकी उत्पत्ति जल से है। इस शरीर का पालन-पोषण जल के पदार्थों से होता है। इसलिये जल ही इसकी दवाई

है। अब इसको पीना कैसे चाहिये ? कोई आदमी तो आचमनी से मुंह में डाल देते हैं। कोई हथेली से ऊपर ऊपर मुंह में डाल देते हैं कि हाथ अशुद्ध न हो। कोई घूंट भर पी लेते हैं। ये सब तरीके ग़लत हैं।

रहस्य--

पानी को अभिमन्त्रित कर के हाथ की कलाई जिस का नाम ब्रह्मतीर्थ रखा हैं, दोनों होंठों को यहां पर लगाकर पानी को हवा से खींचो। बाहर की आक्सिज़न प्राणप्रद वायु के द्वारा थोड़ा थोड़ा पानी जब अन्दर जायगा तो भाप के रूप में जायगा और यही भाप सूक्ष्मरूप सर्व औषध बन कर गले की बीमारी को तुरन्त दूर कर देने वाली होती है। यह स्थान क्यों विशिष्ट है ? तुम देखते हो कि जब इन्सान नींद से जागता है तो इसी जगह से आंखों को मल कर उनकी पुतली को फैला देता है। यहां पर ऐसी नाड़ियों का संगम है जिन का रक्त अत्यन्त निर्मल और बिजली का असर रखता है, जैसे गङ्गा का अमृत और रोग विनाशक जल या खनिज जल (Minral water), इस लिये इसका नाम ब्रह्मतीर्थ रख दिया। इसी जगह के पास का नाम मोर्चा है। जैसे दुश्मन के मोर्चा लगाया जाता है, पहलवान लोग बल बढ़ाने के लिये कलाई को पकड़ते हैं, यही बल वाली जगह शरीर रक्षा के लिये मोर्चा है। अब तीसरे मन्त्र का अर्थ बहुत ही रहस्य वाला है। अगर उसे समझाया तो हवन में देर हो जायगी और मेरे नये सज्जनों की शंकाएं और भी बढ़ जायेंगी कि जल का सत्य, यश, शोभा और सम्पत्ति से क्या सम्बन्ध है ? विशेषतया सत्य और यश का ? इसलिये अब हवन कर लो और शाम को समझाऊंगा।

आठवीं झांकी

दक्षिणा का रहस्य

विघ्न तो पड़ने लगा था पर प्रभु जब यज्ञ के आप ही पति हो जाते हैं तो सब विघ्न भाग जाते हैं और यज्ञ का रूप सुन्दर हो जाता है। धनराज जी ने यज्ञ की समाप्ति पर कहा—भगवन् ! आप की बड़ी कृपा हुई। आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यद्यपि यज्ञ के संबन्ध में अभी केवल दो मंत्रों के आचमन की ही व्याख्या सुनी है पर यज्ञ के करने में और अग्नि की ज्वाला को विचित्र सुन्दर रूप में देख कर ऐसा हर्ष हो रहा है कि पहले कभी हवन यज्ञों में ऐसा आनन्द कम ही आया होगा।

महात्मा—यह सब प्रभु की अपनी लीला है। वही विघ्न विनाशक और यज्ञ का देवता है। (धनराज ने जेब से बटुआ निकाल कर एक नोट निकाला) यह क्या करते हो ?

धनराज—दक्षिणा के लिये ?

महात्मा—कैसी दक्षिणा ?

धनराज—कोई भी यज्ञ दक्षिणा के बिना सफल नहीं होता।

महात्मा—यह ठीक है परन्तु यह यज्ञ तुम्हारा कोई यज्ञ नहीं है। यह तो हम सब ने मंगल पाठ किया है। शेष रहा, मेरा तुम को उपदेश। उपदेश के बदले यह लेना मैं गुण नहीं समझता बल्कि दुर्गुण समझता हूं। अब तुम यदि सच्ची दक्षिणा देना चाहते हो तो इस यज्ञ की वेदी के ऊपर प्रतिज्ञा करो कि मैं नित्य प्रति हवन करूंगा।

धनराज—महाराज! यह तो बड़ी मुश्किल है। प्रतिज्ञा कर दूं फिर कभी न कर सकूं। बाहर आना जाना हुआ। प्रतिज्ञा न करायें, मैं कोशिश करूंगा।

महात्मा—कोशिश सत्य व्यवहार का शब्द नहीं। रोटी खाने में कोशिश नहीं करते। शौच आदि में कोशिश नहीं करते। बाहर-अन्दर, बीमारी आदि में भी यह काम नित्य ही करते हो और हो जाते हैं। पहले ऐसा कष्ट अनुभव होता है, परन्तु करने पर सुगम हो जाता है।

धनराज—आप कृपा करें। नक़द दक्षिणा भी आप मांग लेवें। मैं ज़रा इन्कार नहीं करूंगा। यह प्रतिज्ञा न करायें।

महात्मा—माना कि तुम लखपति हो। तभी धन का मान करते हो और सिक्का देकर तुम सब पुण्य ख़रीदना चाहते हो अर्थात् तुम मामूली काग़ज़ के बदले प्रभु को बांधना चाहते हो।

सज्जनों में से एक सज्जन—क्या दक्षिणा के दे देने में प्रभु और सब पुण्य बंधे हुए हैं या आप के मुंह से ऐसा निकल गया है ?

महात्मा—जो कुछ कहा है ठीक कहा है। न मुंह से निकला, न मज़ाक किया। तुम को तो तुम्हारी सब शंकाओं का जवाब इकट्ठा दूंगा।

सज्जन—नहीं महाराज ! अब यज्ञ तो हो चुका। माना कि देर हो गई है पर और शंकाओं का समाधान तो हम कल करायेंगे, इसका तो हमें अभी ही कर दो।

महात्मा—तुम पहले यह बोलो कि दक्षिणा यज्ञ में ज़रूरी चीज़ है या नहीं ?

सज्जन—ज़रूरी तो है।

महात्मा—क्यों ?

सज्जन—कि जिस ने परिश्रम किया हो, उस को परिश्रमिक (मज़दूरी) अवश्य देना चाहिये। नहीं तो पाप है और बस।

महात्मा—अर्थात् तुम इस को मज़दूरी समझते हो और तुम केवल इस कार्य की मज़दूरी देते हो।

सज्जन—हां, हम तो ऐसा समझते हैं।

महात्मा—तुम लोग फिर सच्चे हो। तुम्हारे चित्त में यज्ञ का क्या मान और श्रद्धा है ? पीछे मैं बतला चुका हूं कि यज्ञ का नाम मानव संसार में प्रेम है। प्रेम के लिये ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। किसी को किसी अंश में भी जाने बिना प्रेम नहीं हो सकता और प्रेम होने पर ही इस का गुह्यतम और यथार्थ रहस्य जाना जाता है। ज्यों ज्यों रहस्य मालूम होता है त्यों त्यों और

प्रेम बढ़ता है। वेदमें दक्षिणाके लिये सूक्तके सूक्त हैं देखें ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १०७।

[१] दक्षिणा अन्धकार से मुक्त करने वाली ज्योति है।

[२] दक्षिणा दिव्यपूर्त्ति करने वाली है। दैवी पूर्त्तिर्दक्षिणा देवयज्या।

[३] दक्षिणावान् की समाज में उत्तम स्थिति होती है।

[४] दक्षिणावान् ही समाज का वास्तविक नेता होता है। दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति।

[५] दक्षिणा से भौतिक सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति।

[६] दक्षिणावान् का गृहस्थ सुखमय होता है।

[७] लोग दक्षिणावान् की सब तरह सेवा शुश्रूषा करते हैं।

[८] दक्षिणा का यज्ञ के साथ वही संबन्ध है जो गाय के साथ रस्सी का है। रस्सी गाय के मूल्य की तुलना में तुच्छ होती है पर गाय को जहां चाहे ले जा सकती है, फिरा सकती है, घुमा सकती है। बिना रस्सीके गाय एक स्थानी है। 'दक्षिणा वै यज्ञानां पुरोगवी' अर्थात् दक्षिणा यज्ञ के आगे आगे चलने वाली होती है। जहां जहां यज्ञ जाता है, यज्ञ किया जाता है, वहां वहां पहिले दक्षिणा जाती है। ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है 'यज्ञोऽदक्षिणोरिष्यति। तस्मादाहुः दातव्यैवयज्ञे दक्षिणा'। दक्षिणा के बिना यज्ञ का वास्तविक स्वरूप नष्ट हो जाता है।

[९] सर्व साधारण पुरुषों की आयु शरीर समाप्ति के साथ समाप्त हो जाती है परन्तु दक्षिणावान् पुरुषों की आयु उसके बाद भी रहती है। वे अपना नाम पीछे भी छोड़ जाते हैं।

[१०] जिस कामना से यज्ञ किया जाता है उसी कामना की

पूर्त्ति उस यज्ञ से होती है। यदि धनसंग्रह के लिये यज्ञ किया गया हो तो धनप्राप्ति होगी और दिव्य भावों की पूर्त्ति के लिये, शिक्षा आदि की हर तरह वृद्धि के लिये यज्ञ सम्पादन हुआ है तो इसी की पूर्त्ति होगी। यज्ञ का नाम इष्टकामधुक् है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥ गीता० ३।१०॥

अर्थात् परमात्मा ने यज्ञ (संगति की प्रवृत्ति) सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके उनसे कहा कि तुम इस के द्वारा जो कुछ चाहो उत्पन्न कर लो। यह यज्ञ तुम्हारी सब अभिलषित कामनाओं को पूर्ण करने वाला होवे।

यज्ञ तो एक शक्तिपुंज है जो अच्छाई या बुराई दोनोंके लिये प्रयुक्त हो सकता है। प्राचीन लोग इससे स्वर्गप्राप्ति भी करते थे।

जिन मनुष्यों को मोक्ष की, आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा नहीं होती जो अपने सामाजिक जीवन की उन्नति के लिये भी रुचि नहीं रखते, जिनकी एकमात्र इच्छा अपने पास सब भोग विलास का सामान एकत्रित करके स्वयं मज़े उड़ाने की होती है, जो पुरुष इन्हीं में सुख मानते हैं उनसे इस मन्त्र में कहा गया है कि हे मनुष्य! यदि तुम्हें मोक्ष आदि की भी ज़रूरत नहीं; केवल सोना, चांदी, गाय, घोड़े तथा अन्न आदि की प्राप्ति की इच्छा है तो वह भी तुम्हारी इच्छा दक्षिणा से अच्छी तरह पूर्ण होगी। जिस तरह कारख़ानों में, कम्पनियों में मामूली भाग ख़रीद कर मनुष्य उसका स्वामी, साझीदार कहलाता है, घर बैठे उसके लाभ को लेता है ऐसे यज्ञ करने वाला और उसकी दक्षिणा देने वाला अपने आपको जिस चीज़ का चाहे साझीदार (Share holder) बना सकता

है। देखो! वेद कहता है "इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणाभ्यो ददाति" ऋग्वेद १०-१०७-८।

अर्थात् यह जो संपूर्ण संसार है और इसका सुख है वह सब यज्ञार्थ किया हुआ त्याग उन दानी पुरुषों को प्रदान करता है। मेरे प्यारे सज्जनो! मैंने अपनी तरफ़ से दक्षिणा के बारे में कोई मनघड़न्त नहीं बतलाई। यह सब वेदभगवान् की आज्ञा है। यह और बात है कि तुम इस रहस्य को न समझो क्योंकि तुम में जब तक वेद के ऊपर श्रद्धा नहीं होगी तब तक तुम को कुछ नहीं मिलेगा। मैं तुमको एक मोटा सिद्धान्त बता दूं। मनुष्य यात्री है और यात्रा के लिये सवारी, पांव, साइकल, मोटर, गाड़ी, घोड़ा आदि होते हैं। शरीर मार्ग की यात्रा करने के लिये दक्षिणा एक ऐसी बढ़िया और उत्तम सवारी है कि इसके बराबर कोई सवारी नहीं। जैसे यज्ञ का शब्द छोटा और अर्थ बहुत हैं, अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध तक यज्ञ में आते हैं। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथियज्ञ, ये सब यज्ञ हैं और इनका नाम पञ्च-महायज्ञ है। सब यज्ञों में ये बड़े हैं क्योंकि ये नित्य के हैं। जैसे शरीर में त्वचा से लेकर या रस से वीर्य तक सात धातु हैं पर नित्य के चलाने वाला और सारे शरीर का आश्रय रक्त है, ऐसे ही ये यज्ञों में महायज्ञ हैं और ऐसे ही दक्षिणा का अर्थ समझो। शब्द छोटा, पर अर्थ विस्तृत। किसी भी प्रकार के त्याग का नाम दक्षिणा है पर यह शब्द विशिष्ट इस यज्ञ के लिये है। अब अगर तुम्हारा सन्तोष हो तो वेहतर, अन्यथा मैं और युक्ति देकर समय ही गंवाना समझता हूं। जब तुम को श्रद्धा वेद पर हो गई तो युक्ति भी सफल होगी। अब धनराज ने तुरन्त हाथ जोड़कर कह दिया

कि मेरी प्रतिज्ञा लो, मैं सहर्ष प्रतिज्ञा करता हूं।

महात्मा—अच्छा, हाथ में पानी लो। यह संकल्प करने का, ख़ुशी से स्वीकार करने का प्राचीन चिह्न है। बोलो—

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि। य० अ० १ मं० ५

मैं इस यज्ञ की पवित्र वेदी के ऊपर सभा-मण्डप में प्रभु को साक्षी कर के सच्चे दिल से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं नित्यप्रति हवन करूंगा। विना हवन किये अन्न नहीं ग्रहण करूंगा। प्रभु हमें बल दें और आप सब आशीर्वाद दें कि मैं अपनी प्रतिज्ञा के ऊपर दृढ़ रहूं और अपने जीवन को सफल बनाऊं।

सब ने वधाई दी। अब धनराज ने सब का सत्कार किया और महात्मा जी से कहा कि महाराज! भोजन तैयार है।

महात्मा:—मेरा भोजन तो भक्त जी के यहां है। तुम ने कल कहा नहीं। जैसे यज्ञ का निमन्त्रण दिया था ऐसे भोजन का भी देते। ऐसे तो मैं नहीं कर सकता।

लोग:—क्या हुआ महाराज! भक्त जी के आप रोज़ ही खाते हैं। न कह सका, भूल गया, अब क्या बिगड़ता है?

महात्मा:—मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता। संसार बिगड़ता है। ऋषियों मुनियों की बनाई शैली का निरादर होता है। तुम स्वाध्याय करने वाले होवो तो तुम को अपनी हिन्दू आर्यजाति की सभ्यता, शिष्टाचार का पता लगता, और यह भी मैं तुम को बतला दूं कि जैसे दक्षिणा ज़रूरी है वैसे यज्ञ के ऊपर भोजन खिलाना

भी यजमान के लिये ज़रूरी है। इस के भी मन्त्र सुन लो। गृहस्थी का सुखमय जीवन इसी में है।

मन्त्रः--ओं भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः। भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति।

ऋ० मं० १० सू० १०७ मं० ९।

अर्थात् यज्ञ में भोजन दान देने वाला सब से पहले उत्तम गृहस्थ को जीत लेता है। वधू जो कुलीन घराने की होती है, को जीत लेता है। ऐश्वर्य के अन्तर्लीन सार को, वास्तविक सुख को जीत लेता है, जो सुख बिना बुलाये आ जाता है। ऐसे और भी मन्त्र हैं। यह भी दक्षिणा का अङ्ग है। अब मैं क्षमा चाहता हूं। शिष्टाचार का बिगाड़ नहीं करता। आगे ख़्याल रखना।

धनराज़ः--फिर शाम को हवन भी मेरे घर और भोजन भी

महात्माः--अच्छा, ऐसे ही सही। अब सब लोग आराम करो। फिर शंका निवारण के लिये दर्शन देना।

अभी इस यज्ञ और दक्षिणा के विषय में और भी बता दूं कि जब बच्चा अभी पैदा होता है, जातकर्म संस्कार में उस एक दो घण्टे के नवजात बालक के कान में जब ९ मन्त्र पढ़े जाते हैं तो इस में ही उस की आत्मा पर यज्ञ, दक्षिणा के सम्बन्ध में विशेष तौर पर अङ्कित किया जाता है। देखो संस्कार विधि मन्त्र ८॥

ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन त्वा-युषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। पा० कां० १। कं० १६

अर्थात्—ऐ बालक! ईश्वर करे दक्षिणा सहित यज्ञ अमृत रूप से तेरी आयु के बढ़ाने वाले हों। और जब विवाह संस्कार होता हैं तो राष्ट्र भृत-की आहुतियों में विशेष तौर पर यज्ञ दक्षिणा के लिये आहुति दी जाती है। मन्त्र नं० १०

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अपसरसस्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा इदं दक्षिणाभ्यो अपशरोभ्यः स्तावाभ्यः इदन्नमम। पार० कां० १। कं० ५।

अर्थात्—सब भूतों को पालने वाला, अच्छे ज्ञान वाला, पृथ्वी को धारण करने वाला यज्ञ है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्धि कराने वाली दक्षिणा प्रशंसा के योग्य है।

मनुस्मृति के अध्याय ११ श्लोक ३८ में लिखा है कि धन के होते हुवे प्रजापति देवता के निमित्त अश्व और अग्न्याधेय की दक्षिणा न देवे तो ब्राह्मण अनाहिताग्नि हो जाता है (अर्थात् उसको आधान का फल प्राप्त नहीं होता)।

श्लोक ३९ में है कि आदमी इन्द्रियों को जीत कर श्रद्धा से दूसरा पुण्य कर्म करे, परन्तु थोड़ी दक्षिणा से यज्ञ न करे।

श्लोक नं० ४० में लिखा है कि थोड़ी दक्षिणा वाले यज्ञ इन्द्रियों, यश, स्वर्ग, आयु, कीर्त्ति, सन्तान और गौ आदि पशु इन सब को नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। इसलिये थोड़े धन वाला यज्ञ न करे।

नवीं झांकी

शंका समाधानः—

पीपल की ठण्डी छाया में महात्मा जी पुस्तक लिये पढ़ रहें हैं और पढ़ते पढ़ते आंख मूंद लेते हैं। थोड़ी देर बाद कुछ नोट सा करने लग जाते हैं। दूर वही सज्जन लोग ऐसा देख कर दिल में विचारने लगे कि महात्मा जी शायद हमारी शंकाओं का जवाब तैयार कर रहे होंगे या कुछ और विचार करते होंगे। चलते चलते वहां पहुंच गये। नमस्ते, नमस्ते महाराज! कर के बैठगये और पूछने लगे महाराज! कैसा स्वाध्याय कर रहे हैं?

महात्माः—स्वाध्याय तो आप लोग करते हैं। हम तो पुस्तक ही पढ़ रहे हैं।

सज्जन जन—तो पुस्तक का पढ़ना कुछ और है? और स्वाध्याय कुछ और होता है?

महात्माः—मेरा तो यही ख्याल है। आप ही बोलिये आप अपना विषय देख आये?

सज्जन—हमने जवाब लेना है। हमने कौनसा विषय तैयार करना था? तैयारी तो आपको चाहिये।

महात्माः—फिर ऋषि ग्रन्थ ले आये हो?

सज्जन—कौन सा ग्रन्थ लाते ?

महात्मा—जिसमें यज्ञ के बारे में स्वामी जी ने कुछ लिखा हो। फिर यह न कहो कि महात्मा अपनी किसी पुस्तक से दिखाता है। तुम्हारा अपना ही लाया हुआ हो तो अच्छा है।

सज्जन—नहीं महाराज! यह सामने संस्कारविधि पड़ी है। इसी में से ही दिखा देवें।

महात्मा—लो यह किताब देखलो। संस्कारविधि संवत् १९७७ की है। यही ऋषिदयानन्द कृत है।

सज्जन—हां महाराज!

महात्मा—पृष्ठ ४ (१)—सब संस्कारों के आदि में निम्न लिखित मन्त्रों का पाठ (स्तुति, प्रार्थना, उपासना) और अर्थ-द्वारा एक विद्वान् व बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थिर चित्त हो कर परमात्मा में ध्यान लगा कर करे और सब लोग इस में ध्यान लगा कर सुनें और विचारें। (२) [पृष्ठ २३, पंक्ति १९-२०] और ये प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के विना दूसरा कर्म व दूसरी बात कोई भी न करें और अपने अपने जल-पात्र से सब जने जो यज्ञ करने को बैठे हों, आचमन वाले तीन मन्त्रों से तीन तीन आचमन करें।

(३) पृष्ठ २४—ओं 'भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला, अथवा घृत दीपक जला, उस से कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उस में छोटी छोटी समिधा लगा कर यजमान व पुरोहित उस पात्र को

दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्नि आधान करे।

अब बोलो मेरे सज्जनो! मैंने कौन सा पाखंड या पौराणिक रीति से गृह स्थापन करा कर पूजा कराई या गणेश थापा। कोरे शुष्क ज्ञान के स्वामिओ! तुम ही लोग तो वैदिक धर्म को बदनाम करने वाले हो। पुस्तकों को अलमारियों में बन्द रखते हो कि हवा न लगे। दीमक खा जाती है और दिमाग़ को तर्क के ताले से ऐसा बन्द किया है कि इसमें ज्ञान की हवा न लगे। अश्रद्धा की दीमक खा जावे। सज्जन जन तो बड़े लज्जित हो गये। गर्व चूर हो गया। अब उनके चित्त की काया पलट गई।

बड़ी नम्रता से पांव पकड़ लिये और कहा कि महाराज! हमारा अपराध क्षमा करना। हमने आप का निरादर किया, अपमान किया।

महात्मा—हम बहुत प्रसन्न हैं कि तुम्हारी भूल निकल गई। तुम्हारी अश्रद्धा श्रद्धा में परिणत हो गई। और अब तुम ऋषि दयानन्द के सच्चे भक्त बन सकोगे और आर्यसमाज के सच्चे सेवक बनोगे। यदि तुम चुप रहते और यही समझ कर कि महात्मा अशुद्ध कह रहा है, टाल देते, तो तुम को यह लाभ न होता।

उन में से एक सज्जन बोला—भगवन्! क्या कारण है कि पण्डित लोग आते हैं जलसों में, संस्कारों में, इस विधि से नहीं कराते। क्या उन को भी ज्ञान नहीं है जैसा कि हम को नहीं था?

महात्मा—नहीं, उनको तो ज्ञान है। परन्तु वे क्या करें? उन को आप लोगों ने नौकर वेतनभोगी समझा हुआ है और जैसा

कि यजुर्वेद में ऋषि दयानन्द जी महाराज ने भाष्य करते लिखा है कि अध्यापक और उपदेशक का दर्जा गुरु का है, जो तुम को अन्धकार से प्रकाश के रास्ते पर ले जाता है वही गुरु है। गुरु कोई धारण करने से नहीं बन जाता। हर एक वस्तु प्रभु की जो तुम को ज्ञान देती है, वही गुरु है। आर्यसमाजी लोग गुरु शब्द से ही चिड़ गये हैं। महर्षि का मतलब तो गुरुडम का भाव हटाने का था न कि यह कि तुम बिना सीखे ही ज्ञानवान् कहलाने लग जाओ। जलसों में १२—१ बजा देते हो। उपदेशकों का .खून चूस लेते हो। प्रातः वे कब उठें? कब सन्ध्या हवन करें? उधर तुम्हारा प्रोग्राम है—६ बजे से ७ बजे तक हवन यज्ञ, ७॥ तक भजन, ७॥ से ८॥ तक धर्मोपदेश। परन्तु जब रात को छोड़ा ही १२ बजे १ बजे, तो तुम लोग भी सोये दो बजे। अब तुम भी ७ बजे जल्दी जल्दी आये और पण्डित जी भी। अब वक्त रहा नहीं। तुम से कैसे विधिपूर्वक करायें और कई कई पण्डित ऐसे हैं जो अब भी पूरी तो नहीं, पर श्रद्धा से कराते हैं। परन्तु हर जगह तो वे नहीं पहुंच सकते। दूसरे, यह यज्ञ-विद्या पुस्तकीय विद्या नहीं है कि हर एक पढ़कर इसे ऐसा करने लग जावे। जिसके पूर्व संस्कार ऐसे होंगे चाहे वह विद्वान् है या थोड़ा पढ़ा है, उसको यज्ञ के ऊपर श्रद्धा ही ऐसा प्रकाश कर देती है जैसे सूर्य की किरणें। यह अनुभवी याजक लोगों से ही संबन्ध रखती है।

पुरोहित—

वही सज्जन—यह तो ठीक है, हमारा ही दोष है। पर जिन बड़ी बड़ी समाजों में स्थिर पुरोहित रहते हैं वे भी तो कुछ नहीं समझाते।

महात्मा—अब मुझे कहते तो लज्जा आती है कि उन समाजों ने पुरोहित किस भाव से रखे हुए हैं ? केवल संस्कारों के कराने और दान-चन्दा एकत्र करने के लिये और रविवार का सत्संग लगाने के लिये। उन पुरोहितों का यह हाल है कि एक एक दिन में तीन तीन चार चार संस्कार आ जाते हैं तो वे कहते हैं कि हम सब निपटा आये हैं। अब जो निपटाने का भाव है वह कब यज्ञ या संस्कार हो सकता है ? समाज वालों को हर मास में काफ़ी दान पुरोहित ला देता है, अतः उन्हें प्यारा लगता है और वे प्रशंसा करते हैं कि अजी! हमारा पण्डित बहुत काम करता है। दक्षिणा से भी वे हिस्सा लेते हैं और कहीं कहीं तो संपूर्ण दक्षिणा समाज की होती है। पुरोहितों को आजीविका चाहिये, समाज को दान धन। वेद का प्रचार हो, न हो, उनको स्वाध्याय का अवकाश नहीं। सारा दिन साइकल पर चढ़े चन्दा संग्रह करते और संस्कार यज्ञ कराते रहते हैं और जहां पुरोहित नहीं हैं वहां जो कोई दुकानदार या बाबू संस्कार विधि से मंत्र पढ़ना जानता है, शुद्ध या अशुद्ध, उसे कह देते हैं कि महाशय जी ! हमारा यज्ञ या संस्कार कराना है। इस बेचारे को बड़ी मुश्किल हो जाती है। अपना काम छोड़, तब करावे।

अब जब उसे अवकाश का समय निकलता है उस समय झटपट करा देता है। ऐसे आदमी यदि व्याख्या भी करें, या विधि से या श्रद्धा से करावें, अगर उनको ढंग आता है तो वे शर्म के मारे नहीं कराते। उन का जीवन लोगों की दृष्टि में होता है। लोग उसे फिर आडम्बरी समझ लेते हैं। इधर बाबू सारा दिन रिश्वत बटोरता रहा, उधर जैसे कपड़ों से गया था, उन्हीं कपड़ों से दफ़्तर

से आकर निर्धनों का .खून जेब में डाले हुए यज्ञ की वेदी का पुरोहित आ बनता है। या इधर बज़ाज़ या दुकानदार सारा दिन असत्य व्यवहार कर, कम माप, कम तोल तोल, आकर बच्चे का संस्कार कराता है। बच्चे पर किस का असर पड़ेगा ? मन्त्रों का या उस आदमी का ?

सो तुम दोनों बातें संस्कार विधि से सुन लो:—

संस्कार विधि पृ० ५७ पादटिप्पणी—

धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीति से जानने वाला, विद्वान्, सधर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपरि गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है। गोपथब्राह्मण पृष्ठ १२५—अश्लील कुमार्गी पुरुष से यज्ञ न कराना चाहिये।

(२) शास्त्रकार तो इतने आग्रहपूर्वक अनुरोध करते हैं कि जब बच्चा पैदा होवे उसको कोई दुष्ट दुराचारी, कुरूप, अत्याचारी आदि ऐसे पुरुष या स्त्रियां दर्शन न देवें। इनका उस नन्हे बच्चे के कोमल हृदय पर, आत्मा पर गन्दे परमाणुओं का प्रभाव बैठ जाता है।

कई जगहों पर ऐसा भी देखा गया है कि पुरोहित से पीर(गुरु) भिश्ती, रसोइये, गधे का सा काम लिया जाता है। उपदेश और संस्कार में तो उसे पुरोहित बनाकर गुरु, पीर के बराबर समझा जाता है। और जब कोई अधिकारी समाज में जाता है तो कहता है—पण्डित जी ! आप के रहने का क्या लाभ ? गर्मी की ऋतु है। कोई आया गया पानी भी न पी सके। आपको तो घड़े भी रखने चाहियें। पुण्य कमाना चाहिये। वहां पर भिश्ती का काम लिया जाता है। कहीं बाज़ार से घरों से अधिकारी लोग कहते हैं—

पण्डित जी ! हमारी रोटी लेते आवें और बहुधा तो अपना बिस्तरा, ट्रंक या बैग स्टेशन पर छोड़ आने के लिये भी कह देने से नहीं चूकते ।

अब उन सज्जनों में से एक सज्जन बोला—महाराज ! फिर कल का यज्ञ अवश्य मेरे घर पर हो । मैंने कभी यज्ञ नहीं किया । कृपा करके मुझे सब निर्देश सुना देवें कि मैं क्या क्या सामान और सामग्री रक्खूं ? ऐसी पूरी पूरी विधि से बतलावें कि मैं उसी के अनुसार सब बनवा लूं ।

महात्मा ने स्वीकार किया और सामग्री आदि के सम्बन्ध में सब कुछ बतला दिया ।

———

दसवीं झांकी

हवनकुण्ड और यज्ञ के पात्रः—

आज का दिन कैसा ही सुन्दर है कि समाज का चपरासी कागज़ और घण्टा हाथ में लिये मुनादी कर रहा है कि महाशय प्रेमचन्द के शुभ गृह पर एक बृहद्‌यज्ञ होगा। सब प्रेमी नर-नारी दर्शन देवें। इधर प्रेमचन्द महात्मा जी को साथ लेकर अपने गृह में गया और निर्देश मांगे। ईश कृपा से काम करने वाले नौकर चाकर दोस्त सब मौजूद थे।

महात्मा—हवन कुण्ड कहां बनाना चाहते हो?

प्रेमचन्द—मेरा मकान तो सारा पक्के फ़र्श का है। लोहे का हवनकुण्ड रख लेंगे। छोटे बड़े हवनकुण्ड मौजूद हैं। बहुत बड़ा भी बनवाया जा सकता है।

महात्मा—लोहे के हवनकुण्ड में हवन तो हो जायगा पर जो अभिप्राय शास्त्रों का है, वह पूरा नहीं हो सकता है।

प्रेमचन्द—महाराज! यहां तो सब लोग लोहे तांबे के हवनकुण्ड में हवन कर लेते हैं।

महात्मा—धातु के हवनकुण्ड में हवन कर लेने में दोष तो कोई नहीं है, पर यह है असल में लाचारी के समय वा यात्रा में।

प्रेमचन्द—फिर तो गढ़ा खोदना पड़ेगा और मकान भद्दा मालूम होगा।

महात्मा—वाह जी वाह! यज्ञ के लिये बस तुम्हारी यही श्रद्धा है? जब तुम कुण्ड के स्थान पर भाव ही गढ़े का रखते हो तो तुम्हारे यज्ञ करने का लाभ ही क्या? यज्ञशाला से तो मकान सुन्दर दिखाई देते हैं, सौन्दर्य बढ़ जाता है और तुम्हें भद्दा मालूम देगा क्योंकि भाव तुम्हारा उत्तम नहीं है। वही आकार तुम्हारे दिमाग़ से निकल कर आंखों के सामने आरहा है। धन अपना स्वभाव अवश्य दिखाता है। तुम भी सच्चे हो। तुम्हारा कोई दोष नहीं। बारीक से बारीक मलमल के कपड़े के साथ जब माया लग जाती है तो वह अकड़ जाता है। भला तुम तो लिखे पढ़े मनुष्य हो। वेद भगवान् स्वयं साक्षी देता है:—'नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे' अर्थात् हे इन्द्र! धन वाले पुरुष को तू कभी नहीं सख्य के लिये, सख्य भाव के लिये (सखा, मित्र, दोस्त) पाता है, क्यों कि 'पीयन्ति ते सुराश्वः' वे ऐश्वर्य समृद्ध धनमत्त पुरुष हिंसन करते हैं (ऋग्वेद ८।२१।१४, सामवेद उत्तरा० ६।२।४, अथर्व २०।११४।२)। धन में ऐसा नशा होता है कि उससे मदोन्मत्त हुआ पुरुष किसी कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को नहीं देख सकता। जगत् में विरले ही धनसमृद्ध पुरुष होंगे जिन्हों ने कि दूसरों को बिना सताये धन प्राप्त किया हो। इस लिये जैसा व्यवहार होगा वैसा विचार होगा। अगर तुम लोग स्वाध्याय करने वाले होओ तो तुम को धन की कमाई के सिवाय कोई और ऐसा विचार भी कभी हो कि प्रभु ने जो हम पर इतनी कृपा की है, हम को धनपति बनाया है, उस को धन्यवाद देने के लिये, उस की महिमा गान करने के

लिये कोई सत्संग किया करें। मकान पर तो दस बीस हज़ार रुपया लगा दिया। बड़े बड़े इञ्जीनियरों से नक्शे बनवाये। वायु, प्रकाश का बड़ा ख़्याल रक्खा। पाकशाला, शौचालय, स्नानघर, कार्यालय, विश्रामशाला बनवाए। पर यज्ञशाला, उपासनालय का विचार ही नहीं आया कि धन का दाता दानी प्रभु भी हमारा कुछ लगता है या नहीं। तुम ऋषि दयानन्द के भक्त कहलाते हो। ज़रा संस्कारविधि की शालाकर्म विधि में पृष्ठ २३०-२३१ पर अथर्ववेद का मन्त्र देखो कि जिस पर आर्य जाति को अभिमान है। अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ३, मन्त्र ७।

ओ३म् हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले।

अर्थात् उस घर में एक अग्निहोत्र का स्थान, स्त्रियों के रहने का स्थान और पुरुषों व विद्वानों के रहने बैठने, मेल मिलाप करने और सभा का स्थान तथा स्नान, भोजन, ध्यान आदि का भी पृथक् पृथक् एक एक घर बनावे।

प्रेमचन्द—बहुत अच्छा! अब तो लाचारी है। मुझे पता नहीं था कि वेदों में और विशेषतया संस्कारविधि में भी हमारे महर्षि जगद्गुरु ने अपार कृपा की कि सब कुछ लिख दिया। हम स्वाध्याय नहीं करते इसलिये वञ्चित हैं। आप ज़रा दूसरे कमरे में चलिये। वहां पर अंगीठी बनी हुई है, वह भी यज्ञकुण्ड का काम देगी। महात्मा और वह अन्दर गये तो क्या देखा कि एक आग सेकने का सर्दी की ऋतु के लिये गोल और बहुत गहरा गढ़ा बना हुआ है।

महात्मा—यह अग्निकुण्ड तो आप का बना हुआ है पर यज्ञकुण्ड या हवन कुण्ड नहीं है। फिर दूसरे कमरे में ले गये। वहां

आयताकार बना हुआ था। इस में भी आग जलाई जाती है जब अतिथि आते हैं।

महात्मा—यह भी है तो अग्निकुण्ड पर हवनकुण्ड नहीं है।

प्रेमचन्द—बहुत खेद है कि आप को कोई कुण्ड पसन्द नहीं आता। क्या इस में हवन नहीं हो सकेगा या आग जलने से इन्कार करेगी या आहुति न पड़ेगी ? लोढ़ी के मौके पर गोलकुण्ड कुएं की शक्ल के बनाये जाते हैं और इन कुण्डों में एक और विशेषता है कि ये पक्के हैं।

महात्मा—हवनकुण्ड अनेक प्रकार से बनाये जाते हैं। उन की आकृतियों और लंबाई, चौड़ाई में भी भेद होता है। आकृतियों का वह भेद विस्तार (लंबाई-चौड़ाई), सामग्री के परिमाण और यज्ञ के उद्देश्यों के विचार से होता है। तैत्तिरीय संहिता, आपस्तम्ब और अन्यान्य गृह्यसूत्रों में बहुत से कुण्ड विशेष पत्तियों की आकृति के, अनेक कछुए की शक्ल के, बहुतेरे यूक्लिड के आकारों के दिये हैं। उदाहरणार्थ त्रिकोण, समचतुष्कोण, अनेकशः आदमी के खड़े होकर पांव की एड़ी से ऊपर हाथ फैलाये उंगलियों तक के होते हैं। भिन्न भिन्न बीमारियों में भिन्न भिन्न प्रकार की समिधा, भिन्न भिन्न प्रकारकी सामग्री और उनका नाप भिन्न भिन्न होता है। पक्के कुण्डों से वह लाभ नहीं होता जो कच्चे में होता है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने संस्कारविधि में लिखा है (पृष्ठ १६-१७) नित्य मार्जन तथा गोबर से लेपन करें। कच्चे कुण्ड में अग्नि सामग्री घी के परमाणुओं को जहां ऊपर ले जाती है वहां भूमि के नीचे ले जाती है और वे परमाणु ऐसे सुरक्षित रहते हैं कि जिस घर में

प्रतिदिन हवन होता रहे उस घर में प्लेग का चूहा नहीं पैदा होता चाहे आस पास के घर में निकलते हों। वह घर मलेरिया के कृमियों से बचा रहता है और अनेक बीमारियों से बचाव रहता है। अगर यज्ञ का कमरा पृथक् हो और उस में विधि से यज्ञ की अग्नि प्रदीप्त हुआ करे और मलेरिया के बुख़ार का आदमी उस गृह में बैठ जावे तो बुख़ार उतर जावेगा।

प्रेमचन्द—तो क्या रोगों की चिकित्सा भी हवन के द्वारा हो सकती है?

महात्मा—कोई रोग ऐसा नहीं जिस की चिकित्सा यज्ञ के द्वारा न हो सकती हो। गृहस्थी बनते समय अर्थात् विवाह के समय इसके लिये ६ आहुतियां दिलाई जाती हैं जिन से वह प्रतिज्ञा करता है कि हे देवि! मैं तेरे सभी रोगों को इसी हवन से दूर कर दूंगा।

प्रेमचन्द्र—विवाह में हमें तो किसी ने बतलाया ही नहीं। कहां पर लिखा है? कृपा कर के बतलायें तो सही।

महात्मा—(देखो संस्कारविधि विवाह संस्कार पृ. १७७ १७८) अर्थात् ऐ कन्या! तेरी रेखा (मस्तक की रेखाओं के मिलाप के स्थान) में, आंखों की पलकों में, नाभि आदि की नाड़ियों में जो बुरे चिह्न होंगे, जो बालों के संबन्ध में बुराई होगी, चलने में ख़राबी होगी, जो स्वभाव में, बोलने-हंसने में दोष होगा; जो दोष दांतों में, हाथों में, पैरों में होगा; टांगों में, गुप्त इन्द्रिय में, जानुओं में, दूसरे जोड़ों में, और ऐ देवि! तेरे सब उपर्युक्त अंगों में जो रोग होगा उन सब को मैं पूर्ण आहुति के साथ दूर करने की,

मिटा देने की प्रतिज्ञा करता हूं। अनगिनत अज्ञात व्याधियों के कृमि अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में व्यक्ति के जोड़ों, रोमकूपों, रक्त में रहते हैं। इस होम के द्वारा सभी कृमि और पूर्वरूप जिन से बाद में बड़े बड़े भयानक रोग पैदा होते हैं, दूर हो जाते हैं।

प्रेमचन्द्र —अहा ! यह तो ऋषि ने महा उपकार किया था पर हम उस के आचरणहीन अनुयायी हैं जिन को अभी तक ज्ञान ही नहीं। तो क्या और भी रोग-क्षयरोग, चेचक और स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों के भी इलाज हो सकते हैं ?

महात्मा—हां हां, मैंने तो कहा है कि सब की सब बीमारियों के इलाज इसी यज्ञ से हो सकते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति यज्ञकर्म से ही है। इस के बिगड़ने से नाश है। क्यों ? किसी को बीमारी है ?

प्रेमचन्द्र—मेरे एक मित्र को क्षयरोग है। चेचक का तो प्राय: ख़तरा रहता है। जब कहीं हुई, बच्चों को हवा से हो जाती है। मैं अपने मित्र को कभी आप के पास लाऊंगा। आप कृपा कर के मुझे पूरे निर्देश दे देवें ताकि स्थायी यज्ञशाला बनवा दूं। किस प्रकार की हो, किस स्थान पर हो ?

महात्मा—स्थान तो तुम स्वयं चुन लो। इतना मैं बतला देता हूं, जो महर्षि ने आज्ञा दी है। "यज्ञ उस जगह करना चाहिये जहां किसी प्रकार की गन्दगी न हो, या मल न हो और जहां साफ़ और खुली हवा बिना बाधा के आ सके। यज्ञशाला की परिधि अधिक से अधिक १६ हाथ, चौकोर कम से कम ८ हाथ, १६ हाथ की चौकोन में चारों ओर २० स्तम्भ। ८ हाथ

वाली में १२ खंभे लगा कर उन पर छाया करें। छाया की छत १० हाथ ऊंची हो। यज्ञशाला के चारों तरफ़ चार दरवाज़े हों। चारों ओर झण्डियां, पवित्र प्रभाव डालने वाले चित्र, मन्त्र, हरे सुन्दर पत्ते बांधें। हवन कुण्ड के चारों ओर हल्दी, मैदे आदि से रेखाओं से सजाया हुआ हो। हवन कुण्ड आहुति की मात्रा के अनुसार लंबा चौड़ा हो। नीचे एक चौथाई रह जावे। सिद्धान्त यह है कि नित्य कर्म के लिये ८ अंगुल वाला और सामान्य प्रकरण आदि करना हो, तो आध हाथ। अगर इस से बड़ा यज्ञ-गायत्री या यजुर्वेद का यज्ञ करना हो तो सवा हाथ। अगर चारों वेदों का करना हो तो दो हाथ चौकोर। पर जहां घी और मोहन-भोग सामग्री की आहुति देनी हो तो पांचहज़ार आहुति के लिए दो हाथ चौकोर रक्खें। चार हाथ का चौकोर कुण्ड एक लाख आहुति का काम दे सकता है। परन्तु यह याद रक्खो कि ऐसे बड़े यज्ञों में हाथ से स्रुवा पकड़ कर आहुति देना मुश्किल हो जाता है। गर्मी से बैठा नहीं जाता। जितने हाथ का कुण्ड हो उतने हाथ कुण्ड से दूर आसन बिछाना चाहिए, इस से सेक नहीं लगता। भागना भी नहीं पड़ता क्योंकि जहां जहां किसी का आसन जम गया वहां से भागना या मुंह के सामने रुमाल, किताब या कोई चीज़ देना मन को विचलित करता है। चीज़ें रखते समय हवा की दिशा को देख लेना चाहिये ताकि दीपक न बुझने पावे या सामग्री चरु न उड़ने पावे। अब सब बातें नोट कर लेवें:—

[१] प्रातः हवन से पहले आप और आप का परिवार स्नान आदि से निवृत्त हो कर शुद्ध वस्त्र पहन कर यज्ञशाला में आ जावें।

[२] समिधा सुन्दर और उत्तम एक टोकरी में धरा देवें।

[३] सामग्री अपनी कूटनी हो तो अच्छी अच्छी नई ओषधियां लेवें। अगर बाज़ार से बनी बनाई लेनी हो तो देख लेना चाहिये कि वह पुरानी न हो, अच्छी तरह बारीक पीसी गई हो और उस में चारों प्रकार की होम की ओषधियां-सुगन्धित, पुष्टिकारक, मिष्ट, रोगनाशक-डाली गई हों।

[४] घी गर्म कर के छान रक्खें और कुछ घी सामग्री में मिला देवें। सामग्री शुष्क न रहे अन्यथा ज़ुकाम व नज़ला पैदा करेगी।

[५] पञ्चपात्रः—आचमनपात्र, घी का बर्तन, स्रुवा, सामग्री की थाली और जलपात्र घी के डालने के लिये।

[६] सब के सामने जल का पात्र पृथक् पृथक् हो और सामग्री की थाली भी।

[७] एक थाली में समिधा छोटी छोटी चुन देवें।

[८] दीपक भी बना रक्खें। प्रातः होते ही यज्ञ शुरु कर दिया जायगा।

ग्यारहवीं झांकी

संकल्प-आचमन-अंगस्पर्श मन्त्र व्याख्या

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु ।

अर्थ—(मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) वाक् इन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो ।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।

अर्थ—(मे) मेरे (नसोः) दोनों नासिका के छिद्रो में (प्राणः) प्राण वायु वा प्राणेन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो ।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।

अर्थ—(मे) मेरे (अक्ष्णोः) नेत्र गोलकों में (चक्षुः) चक्षु इन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो ।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।

अर्थ—(मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो ।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ।

अर्थ—(मे) मेरे (बह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल, शक्ति (अस्तु) हो ।

ओ३म् ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ।

अर्थ—(मे) मेरी (ऊर्वोः) जंघाओं में (ओजः) वेग (अस्तु) हो।

ओं अरिष्टानि मे अङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।

अर्थ—(मे) मेरा (तनूः) देह और (मे तन्वाः) मेरे देह के [अङ्गानि] अवयव [सह] साथ ही [अरिष्टानि] अनुपहत अबाधित [सन्तु] हों।

वाह वाह ! प्रेमचन्द्र जी का घर शरीरधारी प्रेम बना हुआ है। घर के बाहर झंडियां और 'ओ३म्' का झण्डा आने वाले सज्जनों को इस स्थान पर प्रकाश दे देकर ठहरा रहा है। दरवाज़े के ऊपर 'स्वागतम्' का मोटो लगा है। ड्योढ़ी में जूता उतारने का स्थान पृथक् है, नलका खुला हुआ है। तौलिया और अंगोछा धरा हुआ है। सब कोई अपने आप जूता उतार कर चरण आदि धो तौलिये से पूंछ कर अन्दर यज्ञ की वेदी, जो कमाल की सजी हुई है, जा बैठते हैं। मण्डप में केले, अलियर, भांति भांति के फल फूल गुच्छे दार चारों तरफ़ लटक रहे हैं। ऊपर चंदवा लाल हलवानी कपड़े का टंगा हुआ है। कुण्ड के चारों ओर चित्र, बेल-बूटे और सुन्दरता हवन करने वाले के हार्दिक प्रेम को प्रकट कर रहे हैं। चारों तरफ़ जल के पात्र, सामग्री, घी, समिधा ढंग से रखे हुए हैं। एक कलश भी स्थापित किया हुआ है। मोटोज़ बड़े आकर्षण करने वाले लगाये हुए हैं। देखने वाले देख देख प्रसन्न हो रहे हैं। इतने में महात्मा जी भी आ गये और लोगों में आकर तुरन्त बैठ गये।

प्रेमचन्द्र – महाराज ! आप अपने आसन पर ही विराजिये। आप का स्थान तो पूर्व में बनाया हुआ है।

महात्मा—ठीक है। मैं इस लिये अपने आप नहीं बैठा कि मर्यादा आप लोगों को बतलानी है।

प्रेमचन्द्र—वह क्या ?

महात्मा—देखो संस्कारविधि पृष्ठ २३ । यजमान को कहना चाहिये 'ओं आ वसोः सदने सीद' [अग्नि के स्थान में बैठिये]। यही सभी सभ्य देशों की सभ्यता है । अब भी किसी उत्सव के प्रधान को सभापति की कुर्सी पर बिठाना हो तो अत्यन्त प्रेम, श्रद्धा और शिष्टतापूर्ण रीति से प्रार्थना की जाती है और वह धन्यवाद सहित उत्तर दे कर स्वीकार करता है। इस लिये पुरोहित भी कहता है ' ओं सीदामि ' ।

अब दूसरी बात यह है कि जिस प्रयोजन, मनोरथ के लिये यज्ञ किया जाता हो उस प्रयोजन को यजमान कह देवे ताकि पुरोहित उसी विधि से आरंभ करे। जिस जिस क्रिया को विशेष रूप में उस ने करना होगा उसी के अनुसार करायेगा क्योंकि मैं कह चुका हूं कि संपूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाला यज्ञ होता है, जिसे इष्टकामधुक् का नाम दिया गया है । अब बोलिये यह कैसा यज्ञ है ?

प्रेमचन्द्र—मेरा कोई विशेष मनोरथ तो है नहीं। निष्काम भाव से कर रहा हूं।

महात्मा—अच्छा जैसा मैं बोलूं वैसा बोलते जाओ चूंकि श्लोक तुम नहीं जानते।

ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे सं० १९९१ वैक्र-

माऽब्दे दक्षिणायनग्रीष्मर्तौ आषाढ़मासे शुक्लपक्षे शुभदिने··· वारे रोहिणी नक्षत्रे लग्न— . . . . . ब्रह्ममूहूर्ते अहमद्य विष्णुप्रीत्यर्थं मङ्गल कर्म करणाय भवन्तं वृणे ।

यह सब यजमान ने बोला । अब महात्मा "ओं वृतोऽस्मि" बोले ।

प्यारे सज्जनो ! बजाय इस के कि आप लोग शंका में पड़े रहो और दिल ही दिल में खिजते रहो मैं यही बेहतर समझता हूं कि आप लोगों की शंका निवृत्त ही कर डालूं। फिर यज्ञ की कार्यवाही को आरंभ करूं ताकि आप की शंका विघ्न पैदा करने वाली न बनी रहे और आप का चित्त भी हमारे अनुकूल बन जावे।

लोग—बड़ी कृपा । आप ने हमारे मन को ठीक जान लिया है । हम तो आक्षेप किये बिना बिलकुल न रहते और शायद तब तक हमारी श्रद्धा भी न जमती ।

महात्मा—महर्षि दयानन्द जी ने बड़ी कृपा की कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदों की उत्पत्ति के विषय में पृष्ठ २२ से २४ पर ऐसा लिखा है, श्लोक तो संस्कृत में पृष्ठ २२ पर लिखा है और पृष्ठ २५ पर, ३—१३ तक यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों को ठीक है और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है क्योंकि आर्य लोग नित्यप्रति 'ओ३म् तत् सत्' परमेश्वर के इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण कर के हर कार्य का आरंभ और परमेश्वर का ही नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं कि आनन्द में आज पर्यन्त परमेश्वर की सृष्टि और हम लोग बने हुए हैं और बहीखाता की न्याईं लिखते लिखाते पढ़ते पढ़ाते चले आये हैं कि पूर्वोक्त ब्रह्म-दिन के दूसरे पहर के ऊपर

मध्याह्न के निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वत मनु के भोग होने को बाकी हैं उतने ही मध्याह्न में बाकी रहे हैं। इस लिये यह लेख है।

यह वही वैवस्वत मनु का वर्तमान है। इस के भोग में यह अट्ठाईसवां [२८वां] कलियुग है। कलियुग के प्रथम चरण का भोग हो रहा है। तथा वर्ष, ऋतु, अयन, मास, पक्ष, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न और पल आदि समय में हम ने अमुक काम किया था और करते हैं।

अब आप लोगों ने समझ लिया होगा कि यह संकल्प पढ़ना निरर्थक नहीं है। आर्य हिन्दूजाति पर अब तक कई हमले हुए। उनके पुस्तक जलाये गए। आर्य विद्वानों ने ज्योतिष शास्त्र की इस ज़रूरी बात को कण्ठस्थ कर लिया और नित्य प्रति पढ़ने से वेद और सृष्टि की उत्पत्ति का ठीक ठीक ज्ञान सामने रहा। अन्यथा जैसे पुस्तक न मिलते और दूसरे मत वाले सृष्टि को कोई पांच हज़ार बरस, कोई लाख बरस और कई करोड़ बरस से मानते हैं, आर्य जाति अपने वेदों के आदि सृष्टि में ईश्वरीय होने का प्रमाण न दे सकती। सनातनधर्मी पण्डित अब तक हर कार्य के आरंभ में पूरा संकल्प पढ़ते हैं। चाहे प्रथा बिगड़ गई है कि टके कमाने का साधन बना लिया है तथापि इस लोभ ने जो वास्तविक ज्ञान को नष्ट न होने दिया और बचाये रक्खा-यह सराहनीय बात है। स्वामी जी महाराज ने संस्कारविधि में संक्षेपतः सब से अन्त के शब्द 'अहमद्य उक्त कर्मकरणाय भवन्तं वृणे' लिख दिये कि आर्यलोग ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका को पढ़ कर अपने आप इस संकल्प को पूरा कर लिया करेंगे। बड़े बड़े

यज्ञों में जो पुरोहित पद को ग्रहण करके बिलकुल नहीं पढ़ते उन पर प्रमाद का दोष लगाया जा सकता है। जो अधूरा पढ़ते हैं वे प्रमादी नहीं, वे या तो लकीर के फ़क़ीर हैं या स्वाध्याय से वञ्चित हैं।

पूरा संकल्प पढ़ने से वैदिकसभ्यता की रक्षा होती है। दूसरा 'विष्णु प्रीत्यर्थम्' पर भी कुछ कुछ सन्देह होगा? शास्त्रकार कहते हैं 'यज्ञो वै विष्णुः' यज्ञ विष्णु का स्वरूप है। परमात्मा के तीन गुणों के तीन नाम हैं। पालन-पोषण करने और स्थिति कायम रखने में इसका नाम विष्णु है और यज्ञ से पालन-पोषण और ब्रह्माण्ड की स्थिति है। इसलिये अवसर की उपयुक्तता से विष्णुप्रीत्यर्थम् कहा गया है।

लोग – महाराज! बहुत प्रसन्न किया। हमें अब यह ज्ञान हो गया है कि हम भूले हुए हैं। हम व्यर्थ सनातनियों पर आक्षेप करते हैं। ऋषि ने तो सब कुछ लिख दिया है। अब हम ज़रूर स्वाध्याय करेंगे।

महात्मा—अच्छा अब कार्यवाही आरंभ की जाती है। जैसा पीछे समझाया जा चुका है वैसे आचरण करें।

प्रार्थना प्रारंभ हुई। सब मग्न हो गये। प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण हो चुकने के बाद अब आचमन का समय आया। मेरे साथ साथ जैसा मैंने पीछे समझाया था, वैसा संकल्प करते हुए करना।

लोग—भगवन्! प्रथम तो बहुत लोग नये हैं और जिन्हों ने पहले सुना भी है वे भूल गये।

महात्मा:—निःसंदेह ऐसा होगा। परन्तु उधर देखो, दिन बहुत चढ़ गया है। सब लोगों ने काम काज करने हैं। अच्छा मैं जो पहले बता चुका हूं वह तो नहीं दुहराऊंगा। अब कुछ नया बतलाऊंगा और आज आचमन की ही व्याख्या के बाद और कोई व्याख्या न होगी। फिर कभी होगी।

लोग—बहुत अच्छा!

आचमन व्याख्या:—

महात्मा:—(जल हाथ की हथेली पर लेकर) (१) जल अमृत है क्योंकि शान्ति देता है। दर्शन और स्पर्शन में शीत पहुंचाता है (२) जल अमृत है। हिम [बर्फ़], द्रव और वाष्प (भाप) के रूप में सदा विद्यमान रहता है। 'स्वाहा' कहने पर सच्चे दिल से इसकी महिमा को जान कर समझो कि मनुष्य भी ऐसे सत्, रज, तम के वेष को बदलता है। जीवात्मा स्वयं अमृत है। परमात्मा अमृतों का अमृत है। जल, जीव, परमात्मा का सम्बन्ध समझो। जो अमृत होता है उस में किसी प्रकार का विकार नहीं होता। तू अपने जीवन को इसी अमृत के (उपस्तरण) बिछौने और (अपिधान) ओढ़ने में लपेट डाल। जिस तरह बर्फ़ को कम्बलों में लपेट कर बाहर की गर्मी सर्दी से बचा लेते हैं, ऐसे ही तू अपने आप को इस अमृत भाव के कम्बलों में लपेट कर सुरक्षित कर। साथ ही अपना निरादर कभी मत कर। दूसरी अवस्था में सदा परोपकार के लिये बहता रहे, नदी होकर चलता रहे। आगे आने वाले दोषों [गढ़ों] को भरता और सतह समतल रखता चला जा। तीसरी अवस्था में अग्निदेव के संग से ऊपर ऊपर अमृत लोक को चढ़ता चला जा।

अब तीसरा आचमन है। **ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।** हे परमेश्वर! मेरे अन्दर सत्य स्थिर रहे। कभी असत्य का व्यवहार न करूं। मुझे यश प्राप्त हो। संकोच को मैं छोड़ कर प्राणी मात्र को गले लगाऊं। मेरे अन्दर दिव्यशक्ति स्थिर रहे। मेरे पास लक्ष्मी हो। ऐसी कुलक्षणी लक्ष्मी न हो, निस्तेज लक्ष्मी न हो, जिसके होते कोई अर्थी मुझ से सहायता न पा सके। अपनी लक्ष्मी से दूसरे का अहित न करूं। जैसे जल नीच से ऊंच तक के पालन पोषण में काम आता है ऐसे मेरी संपत्ति दीन दुःखियों, दरिद्रों के पालन और सेवा में लगे। ऐसी प्रार्थना करते हुए एक बार ऐसी भावना करो कि मैं यश और संपत्ति को सत्य के साथ धारण करूं। झूठे यश और खोटी सम्पत्ति का स्वामी न कहलाऊं। सत्य से प्राप्तकी हुई एक कौड़ी को करोड़ों खोटे धनसे बेहतर समझूं और समय आने पर मैं सम्पत्ति को यश के लिये और यश को सत्य के लिये बलिदान कर दूं, स्वाहा कर दूं और सत्य के ऊपर अपने आप को ['स्व'–अपने आप–'आहा' त्याग] बलिदान कर दूं।

स्वाहा शब्द तब कहना चाहिये जब बोलने और मन के भावों में एकता मन्त्र के अर्थों के अनुकूल हो, तब इसका आत्मा के ऊपर पूरा पूरा असर पड़ता है। अब प्रश्न हो सकता है कि जल पहले दो मन्त्रोंमें अमृत, बिछौना और ढकना कहा गया है, वह तो प्रत्यक्ष है ही। जल सत्य, यश और श्री का कैसे उत्पादक या बोधक हो सकता है? सभी अन्न, रस और हीरे मोती को जल पैदा करता है इसलिये धन लक्ष्मी है। प्राणियों, खनिजद्रव्यों, पत्थरों वनस्पतियों की जल से वृद्धि और शोभा है। परोपकार का गुण

रखने से यश का बोधक है। सत्यवादी मनुष्य जब तक जल के संपूर्ण गुणों को धारण न करे वह सत्य का पुजारी नहीं हो सकता। सत्य का पुजारी दोषरहित होता है। दोषी आदमी सत्य का स्वरूप नहीं बन सकता। हवा में गढ़ा भरने का गुण नहीं। दीवार के आने में रुक जाती है। सम रहती है। न ऊपर जा सकती है, न नीचे। इस में मिलाप की शक्ति नहीं। अग्नि ऊपर जाती है, नीचे नहीं। भस्म कर सकती है, मिलाती नहीं। रुकावट में रुक जाती है। बुझाने से बुझ जाती है। पृथ्वी में ढांपने का गुण है। अपनी तरफ़ खींचती है। परन्तु गढ़ा अपने आप नहीं भर सकती। मिलाप-शक्ति नहीं, आकर्षण शक्ति है, पर मिलने के लिये आकर्षण नहीं है। जल में ऊपर जाने, नीचे बहने, सिकुड़ कर बर्फ़ होने, फैल कर पोषण करने, अपनी रोक में से अपना रास्ता किसी दूसरे की सहायता के विना आप बनाने, सम रहने और मिलाप कराने की शक्ति है। अपनी शरण आये को तारने की विशेषता जल की है। यही गुण सत्य को पैदा करते हैं और यह मन्त्र सद् गृहस्थी का सच्चा आदर्श बतलाता है। अमरीका और जर्मनी के बहुत से डाक्टरों का तो यहां तक दावा है कि किसी भयानक से भयानक रोग में भी शुद्ध जल के विधिपूर्वक प्रयोग से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। अब कृपाकर के सब सज्जन तीन वार आचमन करो।

इसी अन्तिम मन्त्र का एक और तरीका भी बतलाऊं। योग दर्शन में एक सूत्र है 'वीतरागविषयं वा चित्तम्' जो महापुरुष राग द्वेष से रहित हैं उन के चित्त में चित्त लगाने से भी आत्मा पर असर पड़ता है। सत्य का पुजारी हरिश्चन्द्र सत्यवादी, महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी–जोकि इस समय का महापुरुष है। जब भी

जल हाथ में लो। मन्त्र पढ़ने पर भावना सहित इन महापुरुषों के आकार को आप जानते ही हैं, ध्यानावस्था में ला कर अपने मन को एकाग्र कर के सत्य के गुण को धारण करने की प्रतिज्ञा करो, प्रार्थना करो, प्रभु से बल मांगो। मेरा अनुभव है बड़ा लाभ पहुंचता है।

अङ्गस्पर्शमन्त्र व्याख्याः—

अब अंगस्पर्श की बारी है। बाहर का लाभ तो यह है कि पानी रुधिर के जोश को कम करता है। कैसा ही क्रोध हो इससे दूर हो जाता है। आलस्य पास फटकने नहीं पाता। परन्तु आन्तरिक लाभ उस से अधिक होता है। संकल्प द्वारा भिन्न भिन्न अंगों के अन्दर पुष्टि का धारण किया जाना जगत्प्रसिद्ध बात है। आत्मोद्बोधन (Auto-suggestion) द्वारा अनेक रोगों की चिकित्सा की जा रही है। दृढ़ और सच्ची भावना से (१) 'ओं वाङ् म आस्येऽस्तु' मेरे मुख में वक्तृत्वशक्ति रहे। (अङ्गस्पर्श के प्रत्येक मन्त्र में बल, ओज, दक्षिणता की अनुवृत्ति रहे) (२) ओं "नसोर्मे प्राणोस्तु" मेरी नासिकाओं में प्राणशक्ति, तन्दुरुस्ती रहे (३) ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु" मेरी दोनों आंखों में दृष्टि रहे, मित्रवत् सब को देखूं। (४) "ओं कर्णयो में श्रोत्रमस्तु" मेरे दोनों कानों में श्रवणशक्ति रहे (५) "ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु" हे ईश्वर! मेरी बाहुओं में बल होवे। (६) "ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु" हे ईश्वर! मेरी जंघाओं में ओजशक्ति बढ़े। [७] "ओं अरिष्टानि मे अङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु" हे ईश्वर! मेरे सब अंग हृष्ट पुष्ट होते हुवे मेरे शरीर के साथ शरीर के सब अंग उत्तम अवस्था में हों।

जिस साधक ने संकल्पशक्ति के रहस्य को जान लिया वह

इस प्रकार के अभ्यास से अपने सब अंगों की बीमारियों को दूर कर सकता है, सुडौल सुन्दर बना सकता है। उन अंगों की शक्तियों को बढ़ा सकता है और यहां तक कि उनका आश्चर्यकारक विकास कर सकता है। मन एक ऐसी शक्ति है कि निश्चय और प्रेममय भक्ति से जो बात इस को कही जावेगी वह इस से बन जायगी। अंगस्पर्श का अन्तिम मन्त्र यही शिक्षा देता है कि शरीर तुम्हारा है। तुम शरीर के स्वामी हो। शरीर के दास नहीं हो। इसलिये धार्मिक कार्यों में इसे लगाओ। प्राकृतिक वासनाओं के उतार चढ़ाव में आ कर यूं ही नाच मत नाचने लग जाया करो। यज्ञ बड़ी संपत्ति है। सौभाग्यशालियों के भाग्य में आती है। समय बहुत हो गया। अब तो मेरे साथ साथ करते चलो। समझाना अब नहीं होगा। किसी दूसरे समय पर रक्खें। यज्ञ में यह आचमन और अङ्गस्पर्श स्वतन्त्रता और पवित्रता-प्रप्ति का आदेश करते हैं।

यज्ञ प्रभु की कृपा से निर्विघ्न संपूर्ण हो गया। यजमान ने आशीर्वाद लेकर, शेष बांट सब का सत्कार किया और सब विदा हुए।

बारहवीं झांकी

तपेदिक और हवन

यज्ञ का अधिकारी

आज तीसरे पहर अभी महात्मा विश्राम कर के बाहर निकले ही थे कि महाशय प्रेमचन्द्र जी अपने एक अच्छे जैन्टलमैनी वेष से विभूषित सज्जन के साथ मिले। नमस्ते की और कहा भगवन् ! यही मित्र हैं जिन को तपेदिक की शिकायत बतलाते हैं। आप आशीर्वाद देवें कि स्वस्थ हो जायं। बड़े भले सज्जन पुरुष हैं।

महात्मा उनके साथ वापिस अन्दर आकर बैठ गये। उस जैन्टलमैन के रंग-रूप को देखा और पूछा, हां क्या रोग है ?

जैन्टलमैन—वैद्य और डाक्टर तपेदिक बतलाते हैं।

महात्मा—कब से ऐसी हालत है ?

जैन्टलमैन—बहुत समय से। एक वार आराम भी हो गया था। अब फिर थोड़े महीनों से हो गया है। छुट्टी लेकर आया हूं। चिकित्सा प्रभाव नहीं दिखला रही।

महात्मा—क्या नौकरी है ?

जैन्टलमैन—मैं सब-इनस्पैक्टर पुलिस हूं।

महात्मा—फिर तो आप को बीमारी होनी ही नहीं चाहिये।

प्रेमचन्द्र—क्यों ?

महात्मा—पुलिस विभाग तो क्षात्र वर्णी है। जो क्षत्रिय हो कर प्रजा की जान व माल की रक्षा करता है, उसको जान-माल के तो फिर प्रभु आप रक्षक होते हैं। जिस का रखवाला भगवान् हो उसे कौन सी बला लग सकती है। और ये तो इस महकमे के अफ़सर हैं, इन्सपैक्टर हैं; निगरानी और देख भाल, पड़ताल करने वाले हैं कि प्रजा को चोर डाकू तंग न करें और अपने कर्मचारियों को देखा करें कि वे चोरों के साथ मिलकर प्रजा का नाश न कर देवें। दोनों तरफ़ सज्जनों की रक्षा, दुष्टों को दण्ड, कर्मचारियों की कमान कसे रक्खें।

सब इन्सपैक्टर साहिब ने इतना सुन कर मुंह नीचे कर लिया और लज्जा से उत्तर न दे सका।

महात्मा—क्यों भाई ! क्षत्रिय हो कर ख़तरे में जान है। तो इस से यही अनुमान होता है कि तुम से भी प्रजा को भय रहता है। जब तुम अपने पिता, स्वामी, प्रभु की प्रजा, पुत्रों की रक्षा नहीं करते तो तुम्हारा क्या अधिकार है कि इस प्रभु के दरबार में प्रार्थना की जावे और कोरी प्रार्थना और आशीर्वाद से क्या बन सकता है। सांप की दीर्घायु के लिये प्रार्थना करना मूर्खता है। गौओं के तेज, बल, आयु के लिये तो प्रार्थना ज़रूरी है।

सब इन्सपैक्टर—महाराज ! आप का क्या लगता है ? अगर एक मनुष्य आप के आशीर्वाद से बच जावे, उस का कल्याण हो जावे।

महात्मा—शरीर के रोग को वैद्य दवाई से दूर करता है।

सब इन्स्पैक्टर—जैसे वैद्य बिना विवेक के, अर्थात् किसी पापी या पुण्यात्मा का ख़याल किये बिना रोगी की औषधि करता है ऐसे महात्मा लोग भी आशीर्वाद देते हैं।

महात्मा—वैद्य को शरीर से मतलब है। इस में उस की आजीविका छिपी है। अगर वह आजीविका का भी लोभ नहीं करता तो लोकैषणा का तो लोभ ज़रूर ही किये रखता है। लेकिन किसी महात्मा को इस बात से क्या प्रयोजन? वह मानसिक रोगों की चिकित्सा करता है बिना किसी एषणा और लोभ के। तुम बतलाओ अगर तुम मेरी सेवा का लाभ उठाना चाहते हो तो मैं उपस्थित हूं। वैसा आचरण करना पड़ेगा, जैसा वैद्य के योग [नुस्ख़े] का उस के बतलाये ढंग से प्रयोग किया जाता है। समय आता है जब किसी अनुभवी महात्मा का सत्संग प्राप्त होता है और यह निद्रा की दशा दूर हो कर जागृति पैदा होती है। परन्तु महात्माओं के संसर्ग मात्र में यह सामर्थ्य नहीं है कि बिना कर्मों को अच्छा बनाए, और बुद्धि के ऊपर आये हुए अज्ञान के पर्दे को दूर किये अपने किसी छूमन्तर या आशीर्वाद के प्रताप से ही किसी को सीधा मोक्ष धाम में पहुंचा सकें या रोग दूर कर देवें।

आर्य-धर्म तो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अवस्था को उच्च बनाने का सारा भार अपने कन्धों पर रखने के लिये बाधित करता है। वहां पतित से पतित और कुसंस्कारी जीवों को भी आत्मोन्नति तथा परमपद की प्राप्ति का रास्ता देता है।

सब इन्स्पैक्टर---आप जैसी आज्ञा करें मैं तैयार हूं।

महात्मा---क्या तुम मांस खाते हो ?

सब इन्स्पैक्टर---हां महाराज, खाता तो हूं।

महात्मा- क्या तुम रिश्वत लेते हो ?

सब इन्स्पैक्टर—क्या कहूं ? महकमा ही ऐसा है कि बिना लिये गुज़ारा नहीं होता।

महात्मा—मांसाहारी को वैदिक परिभाषा में राक्षस कहते हैं और जर्म्ज़, विषैले जर्म्ज़ को भी राक्षस कहते हैं क्योंकि वे ख़ून चूसते और पीते हैं। तुम मनुष्यों का मांस व रुधिर चूसते हो और पशुओं का मांस खाते हो। ऐसे वे जर्म्ज़ या तपेदिक के कीड़े तुम्हारा ख़ून चूसते और मांस खाते हैं। तुम आप पढ़े लिखे हो। हिसाब लगा लो। तपेदिक का कीड़ा इतना छोटा होता है कि यदि मध्यम क़द वाले कीड़े एक पंक्ति में रक्खे जावें तो पच्चीस हज़ार कीड़े एक इञ्च जगह में आजावेंगे। यदि तोल किया जाय तो एक खश-खाश के दाने पर २० अरब कीड़े चढ़ जायंगे। इसलिये सिवाय हवन के इसकी श्रेष्ठ चिकित्सा और नहीं हो सकती क्योंकि श्वास और रोम कूपों के द्वारा हवन से पैदा होने वाली गैस औषधियों से अधिक प्रभाव करेगी। अरबों जीव तुम्हारे शरीर में पोषण पा रहे हैं। तुम तो अरबों जीवों का नाश करके अपना शरीर बनाना चाहते हो और क्या जिन जीवों को तुम खाते हो और ख़ून चूसते हो, क्या वे तुम्हारा जीना चाहते होंगे ?

सब इन्सपैक्टर— नहीं।

महात्मा—तो फिर क्या तुम मांस और रिश्वत छोड़ सकते हो ?

सबइन्स्पैक्टर—यह तो मुश्किल है।

महात्मा—मांसाहारी तो आहुति देने का अधिकारी नहीं।

प्रेमचन्द्र—तो क्या अग्नि आहुति लेने से या इस पदार्थ को जलाने से इन्कार करती है या कभी मांसाहारी की आहुति की सुगन्ध फैलने से रुक जाती है ? प्रभु के सब देव अपने अपने नियम बराबर बरतते हैं। जैसे चाहे अग्निहोत्री अग्नि पर हाथ डाले या नास्तिक, दोनों को वह जला देती है। फिर हवन करने में विभेद क्यों ?

महात्मा—यदि केवल ऐसा ही अभिप्रेत समझ लिया जाय जैसा कि आप कह रहे हो, तब तो कोई भेद नहीं पड़ता। परन्तु जब यह मान लिया जाय कि यज्ञ-हवन प्रभु की अत्यन्त श्रेष्ठ देन है, धन है, विभूति है तो फिर उसके लिये अधिकारी ढूंडना पड़ेगा। प्रभु के सब पदार्थ देन और धन हैं। पर सब के सब, सब के लिये नहीं। कई एक चीज़ें उदाहरणार्थ—सूर्य, पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, सब के लिये एक सी हैं और विशेष विशेष चीज़ें विशेष अधिकारी पुरुषों के लिये जैसे राज्य, संपत्ति, सौन्दर्य, विद्या, बुद्धि इत्यादि एक प्रकार की नहीं। यज्ञ तो मनुष्य का प्रतिभू (ज़ामिन) है। इसकी संपत्ति की, जान व माल, भाग्य की बाढ़ है। देखो:—

(१) यज्ञ का अधिकारी बनने के लिये यज्ञोपवीत दिया जाता है और यह सब से पहली अवस्था बच्चे की है जब वह विद्या पढ़ने के लिये द्विज बनना चाहता है। यज्ञोपवीत देकर गुरु उसे यज्ञमय

जीवन को प्राप्त करने के लिये विद्यार्थी बनाता है और पिता शिक्षाएं देता है। संस्कार विधि पृष्ठ ९८ १५ नंबर पर ये हिदायत हैं। 'मांस रुक्षाहारं मद्यादि पानं च वर्जय'। मांस, रूखा, शुष्क अन्न मत खावे और मद्य आदि मत पीवे।

[२] यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र २१

ओ३म् उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जि चारया वृषन्। य स्त्रीणां जीवभोजनः॥

के भाष्य में स्वामी जी महाराज स्पष्ट लिखते हैं कि जो मांसहारी और व्यभिचारी स्त्री पुरुष हों उन्हें उलटा लटका देना चाहिये।

(३) यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र ३६

ओ३म् यन्नीक्षणं माँस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि। ऊष्मण्यापिधाना चरुणामङ्कः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम्।

अर्थात् जिस बर्तन में भोजन पकाया जाय उसकी भली भांति परीक्षा करले कि इस में मांस तो नहीं पकाया गया ?

(४) हवन मन्त्र में जब जल नाली में छिड़का जाता है तो और अर्थों के अतिरिक्त यह भी अर्थ है। सुनो—'ओ३म् अदिते अनुमन्यस्व' ऐ परमात्मन्। हमें ऐसी अक्ल दे कि हम हमेशा अहिंसा-व्रत धर्म का पालन करें अर्थात् हिंसा न करें। [२] 'ओं अनुमते अनुमन्यस्व' ऐ ज्ञानस्वरूप परमात्मन! हमें ज्ञान दीजिये कि हम किसी को दुःख न दें।

(५) मा यज्ञँहिँसिष्टं मा यज्ञपतिम्।

अर्थात् यज्ञ की, यज्ञ का पालन करने वाले की हिंसा मत होने दो।

(६) ऋग्वेद १०—६३—१० 'सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं' [स्वस्तिवाचन में] शान्ति के लिये हिंसा-रहित अच्छे आश्रय वाली, अटूट, दोषरहित दैवी नौका पर चढ़े। दैवी नौका या नाव यज्ञ है जो पीछे कहा गया है।

ओं अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति।

ऋग्वेद १। १। ४

हे परमात्मन्! तुम जिस कुटिलता तथा हिंसा से रहित यज्ञ को सब तरफ़ से व्याप लेते हो, केवल वही यज्ञ दिव्य फल लाता है।

स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण पढ़ते हुए अनेक मन्त्र इस बात को दर्शाते हैं कि पापबुद्धि को हम में से हटाओ। जब मांसाहारी को वेदभगवान् उलटा लटका देने का दण्ड प्रतिपादित करता है और मांस पके बर्तन का प्रयोग करने का निषेध है तो यज्ञ जैसे उत्तम कार्य में मांसाहारी कैसे अधिकारी बन सकता है? जो दूसरे प्राणी को दुःख देता है और अपना सुख चाहता है वह सुख का कैसे भागी बन सकता है? यजुर्वेद और दूसरे वेदों में भी यही मन्त्र आया है।

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥

य० अ० ३६ मन्त्र २३

अर्थात् जल और ओषधियां हम सब के लिये हितकारक होवें तथा उस एक के लिये दुःख कारक होवें कि जो हम से और समाज से द्वेष और हिंसा के भाव रखता है।

सब इन्स्पैक्टर—महाराज ! आप की सब बातें ठीक हैं। मैं अभी तो आपके समक्ष प्रतिज्ञा कर दूं परन्तु फिर न निभा सकूं और गिर जाऊं तो बहुत पाप है। मांस तो अभी छोड़ देता हूं। ईश्वर कृपा करेंगे कि मैं रिश्वत भी त्याग करने के योग्य हो सकूंगा। आप तो अपने साधु-स्वभाव से कृपा करें ही।

महात्मा—अच्छा मैं तो तुम्हारे घर में यज्ञ नहीं करा सकता। हां, तुम को योग [नुस्ख़ा] बतला देता हूं। अपना जा कर करते रहो।

सब इन्स्पैक्टर—आप के कराने में विधिपूर्वक होता, आनन्द आता और मेरा कल्याण हो जाता। मैं विधि जानता नहीं। आप कृपा करें।

महात्मा—जब तुम अपने ऊपर दया नहीं करते तो दूसरा कैसे करे ? परमात्मा तो उन्हीं [भक्तों] की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं या जो अपने आप को प्रभु-चरणों में डाल देते हैं, प्रभु पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। तुम तो नहीं जानते। मैं जिस बात को जानता हूं उसके विरुद्ध आचरण करूं तो मुझे पाप होगा। मन्त्र मन्त्र में 'स्वाहा' आता है, जिसका अर्थ है मैं ठीक कह रहा हूं, अपनी अन्तरात्मा से कह रहा हूं। जिन मन्त्रों में दुर्व्यसन पाप के त्याग की आहुति है वहां 'स्वाहा' कहा हुआ किस काम का ? इसलिये तुम नुस्ख़ा लिख लो। आगे तुम्हारे भाग्य।

तपेदिक—प्रथम नुस्ख़ा [१] सन्दल और कपूर के फूलों आदि से तैयार की हुई बत्तियां जलाई जायं।

[२] पहले दिन शुद्ध गो घृत की एक हज़ार आहुतियां दी जावें।

[३] दूसरे, तीसरे और चौथे दिन तिल, चावल, हरी घास (दूब), जौं और मोठ को शहद और घी में अच्छी तरह मिला कर उन से एक हज़ार आहुतियां दी जायं।

[४] पांचवें और छठे दिन केवल गाय के घी और शहद की एक हज़ार आहुतियां दी जायें।

(५) सातवें और आठवें दिन पीपल और छिछड़ा (पलाश) की पतली पतली लकड़ियां मोटाई में कनिष्ठिका उंगली के बराबर और लंबाई में बालिश्त भर (जो अन्तर अंगूठे से पहली उंगली के बीच है) घी में ख़ूब तर कर के जलावें। यह नुस्ख़ा उन तपेदिक़ के बीमारों के लिये है जो पहले दर्जे में है। मकान अत्यन्त शुद्ध और पवित्र हो। उसमें और कोई चीज़ न रखी जाय। रोगी उस कमरे में निवास करे। आहुतियां गायत्री मन्त्र से दे। खान पान वैद्य की इच्छानुसार करे। मन्त्र ज़ोर से उच्चारण करे। हवन की अग्नि से उसे पसीना आ जाया करे ताकि जल्दी आराम हो जाय, कृमि मरजावें। विकृत द्रव्य बाहर निकल पड़े। सांस गहरे गहरे लेवे। इतने दिन तक अग्नि कुण्ड में प्रातः व सायं निरन्तर उपस्थित रहे। वत्तिओं का धुआं हर समय रहे। लाखी उपजाति की बकरी का दूध प्रयुक्त किया जाय तो बहुत लाभदायक है। प्रभु प्रार्थना और गायत्री जप किया करे।

दूसरा नुस्ख़ा—[१] मण्डूक पर्णी [२] ब्राह्मी [३] इन्द्रायण की जड़ [४] शतावरी [५] असगंध [६] बधारा [७] शालपर्णी [८] मको [९] अडूसा [१०] गुलसुर्ख़ [११] तगर [१२] रास्ना

[१३] बादाम [१४] मुनक्का [१५] जायफल [१६] लौंग [१७] बड़ी हरड़ गुठली समेत [१८] आंवला [१९] जयन्ती [२०] पुनर्नवा [२१] वंशलोचन [२२] खीर काकोली [२३] जटामांसी [२४] पांडरी [२५] गोखरु [२६] पिश्ता [२७] निगंद बावड़ी [२८] चीड़ का बुरादा [२९] खूब कलां सब एक एक भाग [३०] गिलोय [३१] गुग्गुल (चार चार भाग) [३२] पीला केसर [३३] शहद [३४] देसी कपूर [हर एक ¼ हिस्सा] [३५] देसी शक्कर [दस भाग]

गोघृत की इतनी मात्रा हो कि कूटी हुई सामग्री ख़ूब मिल जाय जिसके लड्डू बांधे जा सकें। यदि सामग्री खुश्क रह गई तो रोगी को खांसी बढ़ जाने का विशेष डर है।

(२) साठी के चावलों की खीर प्रतिदिन ताज़ी बनाकर हवन में प्रस्तुत की जाया करे।

यज्ञ में नित्यप्रति सामग्री, साठी के चावलों और गोघृत की आहुतियां पड़नी चाहिए।

विधि—हवन प्रातः सूर्योदय के पश्चात् और शाम को सूर्यास्त से पूर्व करना चाहिये। [२] चीड़ या बांस के जंगल में बैठकर हवन करना अधिक लाभदायक होता है। अन्यथा अपनी किसी वाटिका में कमरा बना लिया जावे। अगर यह भी न हो तो घर के शुद्ध पवित्र स्थान में। [३] आग ख़ूब प्रज्वलित हो, धुआं न हो। आम या ढाक, पीपल की लकड़ियां हों। [४] रोगी ज़ोर से मन्त्रोच्चारण करे [५] इस चिकित्सा के साथ वस्तिकर्म भी कर लिया करे। जल-चिकित्सा का इच्छुक हो तो वह भी कर सकता है, यदि वस्ति कर्म न करे तो [६] खौलते हुए पानी में हरड़ की गुठली, बहेड़े का छिलका डाल देवे। आधा पानी रहने पर उतार

कर ठण्डा करके रक्खे। वही पानी पीता रहे, शहद मिला कर या ऐसे।

यह नुस्खा दूसरे दर्जे के तपेदिक वालों के लिये है और तीसरे दर्जे के रोगियों के लिये भी जिनके पांव में सूजन और दस्त जारी नहीं हुए उनको इतना विशेष करना चाहिये कि इस सामग्री से किये हुए यज्ञ की राख का नमक बनाकर या इस राख को कपड़छान करके बोतल या शीशी में बन्द कर रक्खें। प्रतिदिन बताशे में एक रत्ती से एक माशे तक डाल कर लाखी बकरी के दूध से लिया करे। बकरियों के स्थान में सोवे। उनकी फुँकार से तपेदिक के कृमि मर जाते हैं। अपनी चारपाई के चारों ओर बांधे। प्रभात काल में ओषजन (आक्सिजन) खावे, गहरे सांस (Deep breathing) ले और इसमें अपनी बीमारी को दूर करने का संकल्प करता रहे।

इस तपेदिक के यज्ञ में आहुति उन मंत्रों से दी जानी चाहिये जो मंत्र अथर्ववेद में इसके लिये विशेष हैं और इसके लिये एक छोटी सी पुस्तक 'राजयक्ष्मा रोग पद्धति' के नाम से बनी हुई है। और जो ऐसा रोगी न स्वयं उन मन्त्रों को पढ़ सकता है, न किसी विद्वान् से कराने का सामर्थ्य रखता है, तो वह गायत्री मन्त्र से ही आहुति देवे। आहुति की मात्रा छः माशे से कम न होवे और आहुति-संख्या कुल एक लाख तक है। अपने आर्थिक और शारीरिक सामर्थ्य का ध्यान रख कर करे, जितने दिनों में समाप्त कर सके। यदि रोग मामूली हो तो साढ़े बारह हज़ार आहुतियां एक तोले की देवे और सवा लाख गायत्री का जाप करे। रोगी को कोई भी समय गायत्री या प्रणव के जाप से ख़ाली नहीं छोड़ना चाहिये। प्रभु की उपासना रोग निवृत्ति की अति उत्तम ओषधि है।

प्रेमचन्द्र—धन वालों के लिये तो कोई कठिनाई नहीं है परन्तु निर्धनों की इतनी शक्ति नहीं कि वे इतनी सामग्री का खर्च कर सकें। क्या इनके लिये भी कोई सुविधा है ?

महात्मा—अगर बिलकुल गरीब है तो गधी का दूध पिया करे। बांसा की दातुन किया करे। मकोय और पुनर्नवा का शाक खाया करे। लौंग मुंह में रक्खा करे। तोरी भिण्डी की जड़ एक छटांक रगड़ कर पानी निकाल कर कूज़ा मिश्री डाल कर पिया करे और पीपल और पलाश की समिधा घी में तर करके आहुति दिया करे, जैसा नुस्खा नं० १ के विभाग ५ में बतलाया है। जब तक आराम न हो या एक चलीसा [४०दिन] गायत्री का .खूब जप करे।

प्रेमचन्द्र—अथर्ववेद के मन्त्रों में क्या आशय भरा है ? वैद्य लोग तो नहीं बतलाते।

महात्मा—मैं तुम को एक मन्त्र ही बतला देता हूं। उदाहरण के तौर पर अथर्ववेद ३।३।११।१ **ओं मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् । ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तामेनम् ।**

अर्थात्—हे रोगी ! तुझ को आराम के साथ अधिक देर तक जीवित रहने के लिये गुप्त तपेदिक़ के रोग से और हर प्रकार के प्रत्यक्ष तपेदिक से हवन के द्वारा छुड़ाता हूं। इस समय में इस व्यक्ति को जिस कष्ट या रोग ने पकड़ लिया है उस से आग और हवा अवश्य छुड़ा दें।

चरक चिकित्सा स्थान ८७-१८३—जिस हवन के द्वारा

प्राचीन काल में तपेदिक का रोग दूर किया जाता था, वेद में बतलाये इस हवन को रोग दूर करने के लिये करना चाहिये।

[३] ऐलोपैथी में क्रियोज़ोट (Creosote) ऐसी दवाई है जिसे आम तौर पर इस रोग की चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। वैसे तो खिलाया जाता है किन्तु तीव्र खांसी के प्रभाव को रोकने के लिये इसे (Inhalation) सुंघाते हैं और इसका इस मार्ग द्वारा फेफड़ों पर तुरन्त प्रभाव होता है, परन्तु शक्तिशाली नहीं हो सकता। कोई चीज़ सुंघाने से अवास्तविक होती है। परन्तु हवन की गैस के अन्दर क्रियोज़ोट उपस्थित है। इसके असर से जो खांसी दूर होगी, वह स्थायी तौर पर होगी।

तपेदिक का योग [नुस्ख़ा] प्रथमावस्था:—मिट्टी के कूज़े में आधपाव पानी में सौंफ़ भिगो देवें और रात को बाहर रख देवें। सुबह को उसी पानी में घोट कर आग पर चढ़ा देवें। और दो तोला पानी जब रहे तो उसमें थोड़ी खांड डाल कर एक तोला सुबह पिला देवें, एक तोला शाम। एक सप्ताह करने से ईश कृपा से आराम आ जायगा।

दूसरी अवस्था का तपेदिक:—

जब कोई रोवे और उसकी आंखों से गाल पर पानी टपकने लगे तो उसे रुई के टुकड़े से तर करके जमां कर लें। वही कपास का टुकड़ा कुट[कांसी] के बर्तन में तुरन्त बन्द कर रक्खें। हवा न लगने पावे। प्रातःकाल उस रुई से थोड़ी सी लेकर पानी में डाल देवें [इतना पानी कि जितना वह रोगी पी सके यानी चार पांच घूंट]। जब इस टुकड़े का प्रभाव पानी में चला जावे तो कपास का टुकड़ा पानी में निचोड़ कर बाहर डाल दे। पानी पी लेवे। ऐसे चालीस

दिन तक करे। खान पान में कोई विशेष पथ्य नहीं है, जैसा वैद्य डाक्टर ने कहा हो।

नोट:—यदि किसी के आंसू दुःख शोक से निकले हों उस से रुई तर की जावे तो चालीस दिन चिकित्सा करनी पड़ेगी। किन्तु यदि किसी के हर्ष के आँसू हों, उदाहरणार्थ—ज़ोरदार-कहकहा लगाने से निकलें या किसी मित्र के मिलते समय प्रेम के अश्रु बहें तो चालीस दिन की आवश्यकता नहीं रहेगी। कुछ ही दिनों में आराम आ जायगा।

ये सब नुस्खे़ पुस्तकीय और मौखिक भी सुने हुए बतलाये हैं। कई संस्कार-दीपिका में लिखे हुए हैं। एक पश्चिमी डाक्टर कुन्दनलाल साहिब का अचूक योग है, जो विलायत से हो आये हैं। और कई छोटे छोटे परीक्षित रामबाण प्रयोग साधुओं के बतलाये हुए हैं। प्रयोग कर देखने लायक हैं।

तेरहवीं झांकी

मौन, उच्चारण और आहुति—

चेचक और हवन

मनुष्य साधारणतया तो प्रभु-भक्ति या अपने धर्म के लिये अपने समय और धन को बलिदान नहीं करना चाहता और नहीं जानता (विरला ही भाग्यवान् प्रभु में प्रीति रखता है) परन्तु जब मनुष्य को कोई दुःख या आपत्ति आ घेरे तो सब प्रकार के बाण मारता है। मुल्लां भोपे, पीर औलिया, ब्राह्मण ज्योतिषी से गण्डे, तावीज़, पासे डलवाता है और व्यय करने में संकोच नहीं करता, चाहे ऋण भी क्यों न उठाना पड़े।

महात्मा एक गली से गुज़र रहे थे। शाम होने वाली थी कि हवन की सुगन्ध उन को आई। समझे कसी घर में पास ही हवन हो रहा है। कोई प्रेमी भक्त इस सायंकाल में प्रभु पूजन कर रहा है। थोड़ा सा चले थे कि वह घर भी आ गया, जहां हवन हो रहा है। अपने आप अन्दर चले गये। वहां पर बैठे आदमियों ने उन्हें आया देख कर बड़ा सत्कार किया, बिठलाया और कहने लगे आपने बड़ी कृपा की। हमारा बड़ा सौभाग्य है।

महात्मा—चुप रहे और हाथ से संकेत किया कि करते जाओ। वे लोग मन्त्र इतनी जल्दी पढ़ते थे कि जैसे कोई घास काट रहा हो। चमच बड़ा था और घी उस में दो चार रत्ती लेकर आहुति देते और सामग्री शुष्क शीघ्रतया मन्त्र के समाप्त हो जाने से फेंकने पर कच्ची रह जाती थी और ढेर लगता जाता था। अग्नि बिलकुल मन्द थी और धुआं फैला हुआ था। बस फिर देर क्या थी ? पूर्ण आहुति पर पहुंच गये और शान्ति पाठ पढ़ दिया। अब हाथ जोड़ कर कहने लगे भगवन् ! कोई उपदेश देवें।

महात्मा—उपदेश तो दे दूं, पर तुम सुनोगे नहीं। तुम लोगों को क्रोध आ जायगा। सब बोले वाह महाराज ! आप हमारी भलाई के लिये उपदेश देवें और हम रुष्ट होंगे।

महात्मा—सच को और अपने दोष-त्रुटि को हर कोई नहीं सुन सकता। मैं तो साधु पुरुष हूं। अगर आप लोग क्रोध में भी आ गये तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं। परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि आपका मेरे सुनने से उलटा मन क्लेशित हो। यदि आप लोग अपने किये कर्म को सार्थक और सफल बनाना चाहते हो तो लो सुनो। मैं आते ही आपके सत्कार और भाव को देख कर श्रद्धा के भाव से तो प्रसन्न हुआ परन्तु आप ने जहां मेरा सत्कार किया, वहां यज्ञ का तिरस्कार किया।

मौन—

तब तक तो आप लोग स्वतन्त्र हैं जब तक प्रार्थना शुरू नहीं हुई। जब आप सब प्रभु-दरबार में बैठ गये, प्रभु के द्वार पर प्रार्थना की तो जिन मन्त्रों को आपने मुख से उच्चारण किया उनका यह भी एक अर्थ है कि अब प्रभु के सिवाय किसी और को उच्च स्थान

न देवें। उसी का ही भरोसा रक्खें। वही हमारा सच्चा गुरु, आचार्य और न्यायाधीश है। जो आदमी, चाहे वह धनी हो या विद्वान्, हवन के आरंभ के बाद में आवे वह अपने आप शान्ति से बैठ जाय। हवन करने वालों की वृत्ति देवपूजा के स्थान पर दूसरी तरफ़ न फिरे। और उठ कर सत्कार करने से तो पूजा को छोड़ कर एक मनुष्य का सत्कार किया है, यह ठीक नहीं। हां, यदि विशेष यज्ञ हो तो पहले आदमी नियत कर देना चाहिये जो आगन्तुकों को बड़ी श्रद्धा और प्रेम से यथायोग्य बिठावे पर स्वयं वाणी से काम न लेवे। देखो संस्कार विधि में ऋत्विक् के वर्णन में लिखा है कि यजमान उपर्युक्त रीति से उन को बड़े आदर और मान से उनके निश्चित स्थान पर बैठाये और वे बड़ी प्रसन्नता से अपनी अपनी जगह पर बैठें। इस समय सिवाय यज्ञ-सम्बन्धी आवश्यक कार्यवाही के इधर उधर की कोई बात नहीं होनी चाहिये। सब काम पूरे ध्यान और सावधानी से सम्पादित करने चाहिये।

मन्त्रोच्चारण—मन्त्रोच्चारण के संबन्ध में लिखा है कि सब संस्कारों में अति मधुर स्वर से यजमान (यज्ञ करने वाला) ही मंत्र बोले। मन्त्रों को न तो बहुत जल्दी जल्दी पढ़ना चाहिए और न ही रुक रुक कर परन्तु विधि अनुकूल, जैसा वेद मन्त्रों का उच्चारण है, वैसा बोलना चाहिए।

चमच—चमच कैसा हो ? यह भी संस्कारविधि में देखलो। जब 'ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्……' की आहुति देनी है तब यह लिखा है, "उपरिवर्णित हवन के लिये विशेष तौर से तैयार किये घी के एक चमच से जिसमें ६ माशे ही घी आ सके पूरा भर के आहुति देनी चाहिये।" इस में 'ही' और 'भर के' का शब्द

आग्रहपूर्वक लिखा है। परन्तु आप का चमच तो बड़ा है और घी कई रत्तियां डालते हो। इसलिये अपने सामर्थ्य के अनुसार ही चमच बनाओ पर आहुति भर कर दो। चाहे छः माशे से कम हो पर चमच भरा हुआ हो। इस से मतलब यह है कि तुम्हारे अन्तःकरण के ऊपर पूर्णता का प्रभाव पड़ेगा। जब आदमी चमच अधूरा देता है तो उसका फल भी पूरा नहीं मिलता जैसा कि यजुर्वेद तीसरे अध्याय के ४९ वें मन्त्र में कहा है:—

ओं पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जꣳ शतक्रतोः ॥

चमच को पूरा भर देने से फल पूर्ण गुणों के रूप में मिलता है। यज्ञ के समय में बिलकुल मौन अवस्था धारण कर लेनी चाहिये। सिवाय यज्ञ सम्बन्धी विषय के कोई भी बात आपस में नहीं करनी चाहिये, न और किसी से। जब हम ने प्रभु का आह्वान किया, उसे अपने हृदय मन्दिर में विशेष रूप से विद्यमान जाना तो हमारी भावना बड़ी ऊंची रहनी चाहिये। हम परमात्मा की उपस्थिति में कैसे बातचीत, गप्पाष्टक, या निरर्थक बात अग्निहोत्र की वेदी पर कर सकते हैं। अगर करते हैं तो इसके ये अर्थ हैं कि हम ने आह्वान नहीं किया या प्रभु को हम विद्यमान नहीं समझ रहे। यज्ञ करने वाला जब अपने आप को भगवान् के चरणों में बैठा समझ लेता है तो उसकी पवित्रता और निर्भयता की सीमा नहीं रहती। उस का रोम रोम गद्‌गद होता है। उसके चारों ओर प्रसन्नता के, हर्ष के, आनन्द के परमाणु फिर रहे होते हैं।

आहुति और सामग्री—आहुति देने की यह विधि नहीं है जैसे तुम फेंक रहे हो। सामग्री में घी अच्छा मिलाना चाहिये।

अन्यथा सामग्री शुष्क रहने से दोष पैदा करेगी। ज़ुकाम और नज़ले की बीमारी हो जाती है। रोगविनाश के स्थान पर रोग उत्पन्न करती है।

एक सज्जन—अगर घी अधिक मिला देवें तो हवन के लिये थोड़ा बचेगा।

महात्मा—यह भी तो एक भूल है। क्या जो घी सामग्री में मिलाओगे वह हवन में न पड़ेगा? दूसरे—यदि ऐसा ही विचार है तो सामग्री को थोड़े दूध से चिकना कर लेना चाहिये या खोया, मूंगफली इत्यादि सामग्री में कूट देने चाहियें ताकि उन की चिकना-हट से सामग्री स्निग्ध रहे और थोड़ा सा घी मिलाने से अच्छी बन जावे। सामग्री कितनी लेनी चाहिये? यह सब सामर्थ्य पर है। यदि ६ माशे का सामर्थ्य नहीं, कम है, तो कम से कम परिमाण 'मृगी मुद्रा' है अर्थात् मध्यमा[१] और तर्जनी[२] उंगलियों और अंगूठे को मिला कर इस में जितनी सामग्री आवे यह मृगी मुद्रा है।

घर वाला—मध्यमा और तर्जनी को मिला कर ऊपर अंगूठा आ जावे—इन उंगलियों से भर कर देना क्यों लिखा? पहिली और दूसरी उंगली से क्यों नहीं?

महात्मा—यज्ञ करने वाले को आदेश मिलता है कि बड़े और छोटे का मिलाप हो जावे, तब मिल कर संसार का काम चल सकता है। और याजक कोई बड़ा भी हो, तो छोटे को अपने

१—दरमियानी बड़ा उंगली। २—मध्यमा और कनिष्ठका (सब से छोटी) के बीच वाली उंगली।

बराबर बना लेता है। यज्ञ बल और धन से हो सकता है और धन की रक्षा बल करता है और राज बल धन के बिना चल नहीं सकता।

मध्यमा—बड़ी उंगली—राजा क्षत्रिय और तर्जनी-वैश्य-धन की गिनी जाती है और यह अंगुष्ठ धर्म के लिए गिना गया है। यह दोनों उंगलियां मिलकर भी कुछ नहीं ग्रहण कर सकतीं, सामग्री नहीं उठा सकतीं जब तक अंगुष्ठ-धर्म-साथ न दे। धर्म सदैव ऊपर रहता है और यही वश में रखता है। फिर सामग्री इन उंगलियों से उठा कर मुट्ठी बन्द कर लेनी चाहिए और अंगूठा सामग्री के बीच में आ जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (चार उंगलियां) धर्म और उस धन वस्तु की जो प्रभु के अर्पण होती है, मिलकर रक्षा करें। और देने में गुप्त रीति से दिया जावे ताकि अपनी आंख भी बार बार न देखती रहे।

घर वाला—महाराज! हम लोग तो नहीं जानते। न ही हम प्रतिदिन हवन करते हैं। आज ही किया है। आप के उपदेशों से सुनते रहे हैं कि सब रोग इस से दूर हो जाते हैं। हमारे घर में चेचक का रोगी था। हम ने हवन कर लिया कि उसे आराम हो जायगा।

महात्मा—बहुत अच्छा विचार है। परन्तु चेचक के लिये तो सामग्री का नुस्खा पृथक् है। अगर तुम चाहते हो तो मैं तुम को बतलादूं।

घर वाला – बड़ी कृपा।

चेचक के लिये सामग्री का नुस्खा—

[१] हल्दी [२] नीम की निमोली [३] बहेड़ा [४] मेंहदी [५]

चिरायता [६] मधुयष्टि [मुलट्ठी] [७] खूबकलां [८] मुनक्का हरेक आध आध छटांक, [६] सरसों सुफ़ेद [१०] हरमल प्रत्येक एक एक छटांक, खांड दो छटांक—कुल ८ छटांक। इस में १ तोला शहद मिला देवें। आध सेर साधारण हवन-सामग्री में यह आध सेर सामग्री चेचक की मिला कर उचित मात्रा में घी मिला कर प्रयोग में लावें।

जिस कमरे में हवन किया जाय उस में रोगी रहे और कमरा लाल शीशेदार हो, तो अच्छा है। अन्यथा लाल कपड़े दरवाज़ों पर टांग देने चाहियें ताकि सूर्य की किरणें लाल रंग पर पड़ने से चेचक के लिये बहुत लाभदायक होंगी।

——

चौदहवीं झांकी

देवपूजन—

आज आर्य-समाज मन्दिर में साप्ताहिक सत्संग हो रहा था। महात्मा भी इस सत्संग में बुलाये गये और कहा गया कि आज आप कृपा करके यज्ञ के सम्बन्ध में हमें यह बतलायें कि पुरोहित का आसन क्यों पूर्व में रक्खा जाता है और यजमान का पश्चिम में क्यों ?

महात्मा—प्यारे सज्जनो ! जितनी क्रियाएं मनुष्य स्वयं करता है या संसार में होती हुई देखता है, वे सब की सब इस को शिक्षा देने वाली हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि वह घर आर्य-घर नहीं जहां नित्य अग्निहोत्र,दर्श, पौर्णमासी, चातुर्मास्य तथा अन्य यज्ञ नहीं होते। आप को मालूम है कि सकल देवता यज्ञ करते हैं। मनुष्य को उन से शिक्षा लेनी चाहिये। लो सुनो। 'आर्य' नाम है पुत्र श्रेष्ठ का। अर्य और अर्यमा परमात्मा के नाम हैं और उनके पुत्र को आर्य कहते हैं। हम सब आर्य हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि हम सब आर्य परमात्मा के पुत्र हैं, इसलिये हम सब भाई हो गये। किन्तु हम सब में से किसी का घर कहीं है, किसी का कहीं। कोई विकालत करता है, कोई डाक्टरी। कोई दुकानदारी और व्यापार इत्यादि। अब हम ने भ्रातृभाव बताने के लिये संगठन

यह तो मैंने कही हंसते हंसते। अब ज़रा रहस्य की भी सुनो। बीज बड़ा कि वृत्त ? बीज है तो नन्हा परन्तु कारण है वृत्त का जो लम्बा-चौड़ा, ऊंचा नीचा होता है। इसलिये जिससे सब की उत्पत्ति हो वह होता है महान। ये पञ्चमहायज्ञ नित्यकर्म होने से, सब का अधिकार-सब के लिये आवश्यक होने से और सब का बीज होने से महान् हैं। अब ज़रा ध्यान से सुनो। मैं विस्तार से समझाता हूं। महात्मा गांधी का काम इसी में आ जायगा। महात्मा गांधी जो काम करते हैं वह इसी बीज से पैदा हुआ है।

ब्रह्मयज्ञ, क्यों महायज्ञ है ? ब्रह्मयज्ञ में महान् प्रभु का ध्यान कर साधक महान् बनना चाहता है। क्योंकि जिस प्रकार के संकल्पमय आदर्श हमारे संमुख होते हैं हम वैसे ही ढलते जाते हैं। इसलिये साधक ब्रह्मयज्ञ में विशेष रूप से प्रभु के आन्तरिक प्रकाश को देखने के लिये उत्सुक होकर अन्तर्मुख होने का अभ्यास करता है।

देव यज्ञ - देवयज्ञ में वह भौतिक देवताओं में प्रभु की ज्योति को अनुभव करता हुआ उनके समान उपकारी बनने का यत्न करता है। उस की (प्रभु की) बाह्य विभूतियों और चमत्कारों का ध्यान करता हुआ उसके विराट् स्वरूप का चिन्तन करता है। प्रत्येक भौतिक देवता में प्रभु के प्रकाश की रेखा को देखने का अभ्यास करता है। प्रतिक्षण उसके रचे हुए यज्ञ का चिन्तन करता हुआ अपने अन्दर से स्वार्थ तथा तुच्छता के बीजों और अंकुरों को बाहर उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करता रहता है। एक प्रकार से देवयज्ञ सारे छोटे बड़े यज्ञों का बोधक है।

देव यज्ञ एक प्रकार का प्रायश्चित्त कर्म है। वायु की शुद्धि

तो होगी घी, सामग्री और समिधा से परन्तु लक्ष्य तो आन्तरिक चित्त शुद्धि का है। जिस प्रायश्चित्त कर्म से चित्त की शुद्धि नहीं होती, वह कर्म पूरा नहीं होता।

अन्तःकरण की शुद्धि कैसे हो? अन्तः करण चार भागों में विभक्त है—मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। मन की शुद्धि श्रद्धा से, बुद्धि की विश्वास से, चित्त की तप से और अहंकार की शुद्धि त्याग से होगी और इन सब का साधन ज्ञान, कर्म और उपासना है। बुद्धि में विश्वास बिना ज्ञान के नहीं टिक सकता। त्याग और तप कर्म में ही होता है और मन में श्रद्धा, भक्ति न हो तो कर्म हो नहीं सकता। इसलिये यज्ञ कर्म ही अन्तःकरण की शुद्धि का एक मात्र साधन है।

पितृयज्ञ—पारिवारिक एकता का बढ़ाने वाला है। प्रतिदिन अपने माता-पिता गुरू तथा अन्य आश्रित सम्बन्धियों की सेवा तथा तृप्ति का ठीक ठीक प्रबन्ध करना इस यज्ञ का तात्पर्य है। इस यज्ञ की महत्ता इसलिये है कि माता पिता बिना किसी प्रतिफल के भाव के अपनी सन्तान की रक्षा, पालन-पोषण, त्याग भाव से प्रेम और स्नेह रस से भीज कर करते हैं। उनका अंग अंग सन्तान के लिये प्रेम का स्रोत होता है। उनका ऋण चुकाना सन्तान के लिये असंभव है। इसलिये कि जो सन्तान के लिये विना कामना के अपना कर्त्तव्य समझ कर अपना सब कुछ जिन अंगों को माता पिता ने प्रेम से सींचा है उन अंगों की कमाई को प्रेम के स्रोत की सेवा में लगावें। आर्य धर्म में कुल की मर्यादा की रक्षा करना धर्म का अंग माना गया है। यह तभी हो सकता है जब वृद्ध माता पिता के प्रति सन्तान अपने कर्तव्य का पालन करे।

अतिथि यज्ञ — यह जातीय प्रेम तथा संगठन का अभ्यास क्षेत्र है। यह चौथा महायज्ञ वहीं हो सकता है जहां पितृयज्ञ की प्रतिष्ठा हो। जब कोई विद्वान् सदाचारी संन्यासी महात्मा अनुभवी सज्जन हमारे यहां आ पहुंचे तो हमारा द्वार उस के स्वागत के लिये सदा खुला रहना चाहिये। वेदादि शास्त्रों में ऐसे ही अतिथियों का वर्णन किया गया है। अपने इष्ट-मित्र तथा संबन्धी-वर्ग की सेवा करना अतिथियज्ञ नहीं हो सकता। वे तो अपने अपने अधिकार से सेवा करा लेते हैं और वह कुल-मर्यादा की रक्षा-निमित्त पितृयज्ञ में गिना जाता है। अतिथि महात्मा सामाजिक मर्यादा की रक्षार्थ प्रचार करते घूमते रहते हैं।

भूतयज्ञ—अन्त में सब संकोच का त्याग भी सिखाने के लिये भूतयज्ञ है। जैसे ब्रह्म सब के हृदय में निवास करता है ऐसे ही साधक भी प्राणीमात्र के हृदय में प्रविष्ट होकर उसी ब्रह्म का अनुभव प्राप्त करता है। किसी के हृदय में निवास करना हो तो उसके साथ सच्चा प्रेम और उसकी सदा सहायता करो। जब घर में भोजन तैयार हो तो अपने आप ही न खा जाया करो। कोई पाप-रोगी, कुष्ठी, पंगु, कंगाल द्वार पर खड़ा हो या भूखा पास हो, किसी अन्नदाता की प्रतीक्षा करता हो, तो जाओ प्रथम उसका पेट भरो। इसी प्रकार कुत्ता, बिल्ली, चिड़िया, कौआ आदि प्राणियों का पालन करो। आर्य-जाति में इस पवित्र धर्म का अङ्कुर अभी तक विद्यमान है। लाहौर में मैंने देखा कई भले पुरुष कुत्तों को बाहर रोटियां डाला करते हैं, कौओं को ज्वार, मक्की की फुलियां; कीड़ों मकोड़ों को तिल शक्कर। सिन्ध देश में मैंने देखा कि नदी और समुद्र में मछलियों को आटे की गोलियां बना कर डालते

हैं। मण्डियों में पक्षियों के लिये छोटा अनाज डालते हैं। कहीं बड़े बड़े नमक के ढेले पशुओं, गाय, भैंसों आदि के मार्ग में रख छोड़ते हैं। कहीं घास बखेर डालते हैं। यह प्रथा न केवल लाहौर, कराची में है बल्कि हिन्दू आबादी की हर जगह पर ऐसा रिवाज है। सभी नहीं परन्तु कोई न कोई दयावान् ऐसे काम करता ही रहता है। अब समय के प्रभाव से यह रिवाज विरले आदमियों के भाग्य में रह गया है, आम घटता जा रहा है। यह धर्म जातीय समृद्धि और ऐश्वर्य का एक चिह्न था। मनु भगवान् कहते हैं:—

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ (४ । २१)

यथाशक्ति, जहां तक हो सके ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, अतिथियज्ञ और पितृयज्ञ को न छोड़े।

अहन्यहनि ये त्वेतानकृत्वा भुञ्जते स्वयम्।
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा न च संशयः ॥

महाभारत १०४ । १६

अर्थात् प्रतिदिन जो इन महायज्ञों को किये बिना खाते पीते हैं वे नर केवल मल खाते हैं, वस्तुतः इस में संशय नहीं।

जब आप लोग यज्ञ कुण्ड में अग्नि धरने के लिये अभी केवल कपूर या बत्ती को अग्नि से जगाते ही हो तो तुरन्त उसी क्षण 'ओं भूर्भुवः स्वः' कहते हो और फिर मन्त्र सारा पढ़ कर अग्नि कुण्ड के मध्य में, तलदेश में धरते हो। अगर तुम कभी इस ओर ध्यान दो तो आप को पता लग जावे कि इस कुण्ड की रचना का और मन्त्र का क्या आशय है ? और यजमान अपने मुख से वेद

की यह ऋचा पढ़ा कर अपने लिये किसी बड़ी महत्ता को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करता है। वह क्या बनना चाहता है? कुण्ड के आकार से प्रकट है कि तल बिलकुल छोटा है। ज्यों ज्यों ऊपर बढ़ता है चौड़ा होता जाता है और अन्त में बिलकुल विशाल हो जाता है। यह नीचे का तल भू लोक है। मध्य का भुवः है, अन्तरिक्ष है। ऊपर का भाग विशाल स्वःलोक है। यजमान जब थोड़ी सी अग्नि भूमि के तल पर रखता है तो 'भू र्भुवः स्वः' से बतला रहा है कि हे प्रभो! जिस प्रकार यह अग्नि अपनी ज्वाला नीचे से ऊपर तक फैला देगी, ऐसे ही मेरी दी हुई आहुति, मेरा यह यज्ञ कर्म भूः से स्वः लोक तक विस्तृत हो जाय। भूः से स्वः तक के प्राणियों को पहुंचा दो। मेरा सब भूतों में निवास हो जाय। कितना महान् त्याग और महान् उत्तम भाव है।

अब अर्थ भी सुन लो। हे पृथिवि (देवयजनि) जिस पर देवता नित्य यज्ञ करते हैं और जहां उनकी पूजा होती है (तस्याः) इस प्रकार की (ते) तेरी (पृष्ठे) पीठ पर (अन्नाद्याय) भक्षण-योग्य अन्न के लिये (अन्नादम्) सर्वभक्षक (अग्निम्) अग्नि को (आदधे) रखता हूं ताकि मैं (भूः) भू लोक (भुवः) अन्तरिक्ष लोक (स्वः) स्वः लोक के रस रूप गुणों को धारण कर सकूं। [भूम्ना] बड़ाई में [द्यौः इव] नक्षत्र आदि की महिमा से महान्, देवलोक के समान तथा [वरिम्णा] विस्तार में [पृथ्वी इव] पृथिवी के समान सब प्राणियों का आश्रय बन सकूं।

सेठ दिलबागराय—महाराज! हम भी तो चिरकाल से यज्ञ किया करते हैं। शोक कि कोरे रहे। हम तो अपने आप को कर्मकाण्डी, अग्निहोत्री कहते हैं। अपने मन के सन्तोष और

लोगों की प्रशंसा के अतिरिक्त हमारे पल्ले तो कुछ नहीं पड़ा।

महात्मा—कर्मण्यता को छोड़कर ज्ञान धारण करना तो बालू पर मकान बनाने के समान है और ज्ञान से पृथक् होकर कर्म अन्धे घोड़े के समान है जिसे घसीट कर ही ले जाना पड़ता है। उसे स्वयं मार्ग दिखाई नहीं देता। त्याग से युक्त होकर जो कर्म करना सीख जाता है उसके अन्दर ज्ञान द्वारा विकास पराकाष्ठा को पहुँच कर उसे सिद्ध तथा मुक्त बनाने में बड़ा सहायक होता है, ऐसा विद्वान् और शास्त्रकार कहते हैं। ज्ञानरहित मनुष्य सुकृत के मार्ग को नहीं जान सकता अर्थात् ज्ञान और कर्म मिल कर ही सुकृत के मार्ग पर चलाने में सहायक बनते हैं। कर्म सुकृत का मार्ग है जिसे ज्ञान दिखाता है। कर्म का बल ज्ञान से बढ़ता है और ज्ञान की रक्षा कर्म से होती है। उदाहरणार्थ—एक रोगी पित्त रोग से पीड़ित है। वैद्य के पास गया। उसने कहा मधुर और शीत वस्तु का प्रयोग करो। अब यदि रोगी कहे कि इन में से कौन सी वस्तु अर्थात् मधुर या शीत मुझे लाभ देगी तो उसकी भूल है। वैद्य ने तो बतला दिया कि वह वस्तु जिसमें दोनों गुण हों पित्त के रोग को शान्त करेगी। अकेली एक गुण वाली नहीं।

ऐसे ही शास्त्रकारों ने बतला दिया कि जन्म से छूटने [आवागमन के रोग] का इलाज है ज्ञान सहित कर्म ; न अकेला ज्ञान, न अकेला कर्म। इसलिये प्यारे भाइयो ! यदि यज्ञरूप बनना चाहते हो, अग्निहोत्री कहलाना चाहते हो, आर्यधर्म को जगत में फैलाना चाहते हो तो अपने कर्म को ज्ञान से, विचार से, विधि से, श्रद्धा से स्वादिष्ठ बना दो ताकि दूसरे चख कर मुग्ध हो जावें।

सोलहवीं झांकी

स्वाहा शब्द की व्याख्या—आज वही महात्मा प्रातः काल के समय एक बाग़ में सैर करते करते एक बूटी के पास टकटकी लगा बैठे ही थे कि कुछ आर्य-सज्जनों की एक मण्डली, कई हैट लगाये, कई नंगे सिर, कई पगड़ी और टोपी पहने आकर खड़े हो गये और महात्मा की इस कार्यवाही को देखने लगे कि ये क्या देख रहे हैं। कुछ देर बाद महात्मा की आंखों से पानी टपकने लगा और मुख से 'अहा' निकला। परन्तु खड़े हुए भद्र पुरुषों ने 'स्वाहा' समझा और तत्काल बोल उठे कि महाराज! आप पर यज्ञ की धुन इतनी सवार है कि न यहां अग्नि है, न कुण्ड है, न घी, न सामग्री, फिर भी आप 'स्वाहा' बोल रहे हैं। क्या यहां भी हवन कर रहे हैं?

महात्मा मुस्करा दिये और कहा भाई, प्रभु का धन्यवाद है कि तुम में भी मेरी तरह पागलपन है। आपको मेरी 'अहा' भी 'स्वाहा' प्रतीत हुई। आप धन्य हो, भला आप ही बतलाओ कि मनुष्य 'अहा' का शब्द कब कहता है?

लोग— जब कोई .खुश होता है, किसी चीज़ को देख कर, सुन कर या पाकर, तब उसके मुख से 'अहा' स्वयमेव निकल पड़ता है।

महात्मा—और 'स्वाहा' कब कहा जाता है ?

लोग—जब अग्नि में आहुति दी जाती है।

महात्मा—तो क्या अग्नि में आहुति देने के अतिरिक्त कभी स्वाहा नहीं कहा जाता ?

लोग—नहीं।

महात्मा—ज़रा चुप होकर शान्ति से विचार करो कि बिना अग्नि की आहुति के भी 'स्वाहा' बोला जाता है या नहीं ? सब चुप हो गये और विचार करने लगे, किसी को कुछ स्मरण न आया।

अब महात्मा बोले, भाई! आचमन मन्त्रों को ही दुहरा लो। अब सब के कान खड़े हो गये। कहा, हां महाराज ! वहां तो तीन आचमनों में तीन वार स्वाहा कहते हैं परन्तु हमारी तो मति ही मारी गई। प्रतिदिन करते हैं पर अब याद ही नहीं आया। अब यहां पर एक संशय और भी बढ़ गया कि आचमन-मन्त्र तो पानी का घूंट पीने के लिये है, जिस से कण्ठ की कफ़-निवृत्ति हो जावे। स्वाहा भी कहते हैं तो यह कैसे आहुति बन गई ? महाराज ! अब आप ही समझाइये। हम तो और चक्कर में आ गये।

महात्मा—यह आचमन केवल कफ़-निवृत्त के लिये नहीं। इसमें बड़ा भारी रहस्य है। अग्नि में हवि के स्वाहा करने से क्या परिणाम होता है ?

सेठ दिलबाग़राय—हविष्य पदार्थ के गुण अग्नि के संग से सूक्ष्म होकर आकाश में दूर दूर फैल जाते हैं और जहां जल-वायु को शुद्ध करते हैं वहां पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों को भी सुगन्ध और पुष्टि देते हैं, रोगों का नाश करते हैं।

महात्मा:—ठीक कहा। तो जो हवि मनुष्य के अन्दर जाय, वह भी पिण्ड के अन्दर फैल जानी चाहिये ?

सेठ०—हां जी, और फैल जाती है। जैसे हम जल पीते हैं, रोटी खाते हैं, वह सूक्ष्म होकर हमारे अंग अंग में फैल जाती है और सब को शक्ति देती है।

महात्मा:—जो चीज़ मनुष्य खाता है उसके कितने गुण शरीर में पैदा होते हैं ?

सेठ०—यह तो महाराज, कोई वैद्य बतलायेगा।

केशवदेव—जितने पदार्थ हम खाते हैं एक तो उनमें रंग होता है, दूसरे गन्ध आती है, तीसरे स्वाद होता है; चौथे गर्मी-सर्दी, तरी ख़ुश्की होती है। इन सब का असर होता है, मल से, मूत्र से पता लगता है; और वह ठोस भाग (स्थूल) मल बन कर बाहर निकलता है। जैसे साग खाने से मल हरे रंग का आता है। प्याज़ आदि खाने से मल में वैसी दुर्गन्ध आती है। मिर्च खाने से मूत्र में और शौच के समय गुदा में बहुत जलन सी होती है। ऐसे इस का सूक्ष्म भाग रुधिर में असर करता है जिससे गर्मी, सर्दी या वात, पित्त, कफ़ की अधिकता या न्यूनता का ज्ञान होता है। इस से अधिक मुझे भी कुछ ज्ञान नहीं। मैं साधारण वैद्य हूं।

महात्मा—ठीक ऐसे ही जो हवि हम अन्दर देते हैं उसका असर भी सारे शरीर में हो जाना चाहिये, स्थूल का प्रभाव स्थूल पर, सूक्ष्म का प्रभाव सूक्ष्म भागों पर। जब हम कहते हैं—"ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा" तो इस जलरूपी हवि से हमारे अंग अंग में सत्य, यश, शोभा और संपत्ति समा जानी चाहिये,

फैल जानी चाहिये। एक आदमी जो हवन कुण्ड के पास बैठा है और हवि के जलने से उसे सुगन्ध नहीं आती तो यही कहा जाता है कि इसकी नाक बन्द है। उसे सुगन्ध नहीं आती चाहे वह नज़दीक ही बैठा है। ऐसे ही जो मनुष्य अग्निहोत्र करता है और आचमन से ऐसा कह कर स्वाहा पर अन्दर जल की हवि लेता है और वह हवि अपने गुणों को फैलाती है और हमारे मन में सत्य और आत्मा में यश, शरीर में शोभा और बुद्धि में ज्ञान (संपत्ति) उत्पन्न नहीं होता तो समझो कि सब के सब ताले से बन्द हैं। ख़ुशी तो तब, आनन्द तो तब ही आता है अग्निहोत्री को, जब उसके अंग अंग यज्ञ की हवि बन जायं। असली उद्देश्य तो आहुति का अपने अन्तः करण की पवित्रता और ऊंचाई का है। बाहर की हवि से तो जल वायु पवित्र हो गये और ज्वाला प्रकाश ऊंचा चढ़ गया। अपना अन्तर कोरा रहा तो फिर वही हाल हुआ कि दीपक ने दूसरों को प्रकाश दिया और ख़ुद अपने तले अन्धेरा रहा।

कृष्ण—जल के लेने से सत्य किस तरह उत्पन्न होगा या ऐसे अपने आप कल्पना कर लेनी है ?

महात्मा—कल्पना तो करनी ही पड़ती है परन्तु इस कल्पना-शक्ति का कोई भी असर नहीं होता जब तक इस के साथ एकाग्रता और इच्छा-शक्ति प्रबल न हों। और कल्पना भी वही होती है जो यथार्थ में संभव हो। ग़लत कल्पना का नाम कल्पना नहीं है। वह विकल्प होता है। अदालतों के अन्दर जब अभियोक्ता (मुदई) या अभियुक्त (मुद्दालिया) को गवाहों पर किसी भी कारण से किसी एक पक्ष के षड्यन्त्र, चालबाज़ी, ज़ोर या रोब से दूसरे

पक्ष को विश्वास नहीं होता तो वह कह देता है कि जल का लोटा हाथ में ले कर यह कह दे तो बस उसी का कथन स्वीकार है अर्थात् जल सत्य की सौगन्ध की एक मात्र ज़मानत या चिह्न है। परमात्मा और आत्मा के मिलने का साधन सत्य है और संसार की चीज़ों के मिलाप का साधन एक जल ही है। जो दो चीज़ें आपस में मिलेंगी उन में जल तो अवश्य आयेगा।

असली अभिप्राय आचमन और अंगस्पर्श का तो यही है कि पवित्रता और स्वतन्त्रता प्राप्त हो। धन तो मनुष्य को दान के बदले में मिलता है परन्तु स्वतन्त्रता तो कभी धन-दान से नहीं मिलेगी। पवित्रता से ही स्वतन्त्रता मिल सकती है। पवित्रता के लिये त्याग वृत्ति की ज़रूरत है। यज्ञ तो बिना त्याग-वृत्ति के पूर्ण ही नहीं हो सकता। हवि, अन्न-धन का त्याग भी त्याग कहलाता है पर यह अन्य भूतों, प्राणियों के साथ संबन्ध रखता है। वास्तविक त्याग मम-वृत्ति का है जो आत्मा से सम्बन्धित है और इसी से स्वतन्त्रता मिलती है। होता का अर्थ है, त्याग करने वाला। त्याग वह कर सकता है जो स्वामी हो। दासों का त्याग उपहास होता है और अपने आप को धोखा देना है। इसलिये यज्ञ करने वाले को स्वतन्त्र होने का यत्न करना चाहिये। परतन्त्रता में अग्निहोत्र करने का पूरा अधिकार नहीं हो सकता। स्वराज्य-प्रप्ति के लिये आत्मसिद्धि श्रेष्ठ उपाय है। तीसरे आचमन मन्त्र से तो जब मन में सत्य बस जाय तो पवित्रता आ जाती है। और अंग-स्पर्श का अन्तिम मन्त्र यह शिक्षा देता है कि शरीर तुम्हारा है और पहले मन्त्रों में यही भाव है। उदाहरणार्थ—"ओं वाङ्म आस्येऽस्तु" अर्थात् यह ज़बान, जिह्वा, वाणी, वाक्शक्ति मेरे मुख में रहने वाली मेरी हो,

मेरे अधिकार में हो, मेरा इस पर पूरा काबू हो। आज संसार इस जिह्वा के उलटा अधीन हुआ हुआ है। एक तोले की जीभ तेरह नाच नचाती है। ज़रा किसी ने प्रतिकूल बात की, मेरी ज़बान आपे से बाहर निकल खड़ी? मैं इसे नहीं रोक सका और फिर परिणाम यह हुआ कि परस्पर कलह हो गया और मुकदमा बाज़ी हुई और मुझे गवाहों, वकीलों की लल्लो-चप्पो, प्रार्थना, ख़ुशामद और अधीनता करनी पड़ी।

किसी अच्छी चीज़ को देखा मुंह में पानी भर आया। ज़बान ने बाहर निकल कर या भीख मांगी या चापलूसी की या बेईमानी का पाप कराया। यदि यह वाणी मेरे काबू में हो तो मैं इसका स्वामी हूं। यही स्वतन्त्रता है।

फिर कहा "ओं नसोर्मे प्राणो अस्तु" अर्थात् मेरी नासिका में चलने वाला प्राण मेरे अधीन हो। मुझे अपने प्राण पर पूरा वश हो। अंग-स्पर्श का मतलब तो यही था पर प्राण मेरे वश से बाहर है। मैं इसे एक मिनट भी नहीं रोक सकता। मेरा दम निकलता है। और जिन योगियों ने अपने प्राण को वश में किया उन्होंने अपनी वासनाओं को वश में किया। वही मुक्त हुए। इस प्राण के काबू न कर सकने से ही तो मेरी सब इन्द्रियों की गति उलटी है। फिर कहा—"ओं अक्ष्णो र्मे चक्षुरस्तु" मेरी आंख के गोलक में रहने वाली दर्शनशक्ति मेरी हो जाय, लेकिन मैं अपनी आंख को पांच मिनट भी नहीं मूंद सकता। ज़रा झंकार हुआ, झट खुल जाती है। ज़रा कोई सुन्दर वस्तु देखी उसी की ही बन गई, मतवाली हो गई। इसी के बाहर निकलने ने तो इस की शक्ति को कमज़ोर कर दिया और अब देखने में भी ऐनक की दास हो गई।

जिसका आंख पर वश हो गया, अपवित्रता तो भाग गई।

आगे है "ओं कर्णयो में श्रोत्रमस्तु"। यह सब से बड़ा देवता है। इस पर नियन्त्रण करना कठिन है। आज संसार में वैर-विरोध का बड़ा कारण कान और जिह्वा हैं। जिह्वा निन्दा चुगली करती है और कान निन्दा सुनते हैं। ये आपस में एकता न करें तो आज लड़ाई बन्द हो जाय। कान पर काबू नहीं। दिन रात दूसरे की निन्दा और अपनी स्तुति सुनकर ख़ुश हो रहा है। अपनी निन्दा और दूसरे की स्तुति सुन कर जल भुन रहा है। 'चश्म बन्दो गोश बन्दो लब बेबन्द। गर न बीनी सरेहक बरमन बख़न्द'। किसी महात्मा ने बड़ा सुन्दर कहा है कि आंख, कान, मुख बन्द करो तो फिर प्रभु की गुप्त ज्योति के तुम्हें दर्शन होंगे। इस अंगस्पर्श का यही उद्देश्य है कि मेरे कान मेरे वश में हों, मेरे हो जायं। "ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु" मेरे बाहु का बल मेरा हो जाय अर्थात् मुझे जो आन्तरिक शत्रु सताते हैं, मेरा बल उन पर व्यय हो और दीन दुःखियों की रक्षा कर सकूं। अगर मेरी बाहु का बल किसी दूसरे के अधीन है तो जहां जायगा वहीं लड़ावेगा। बल शब्द 'ब'+'ल'से बना है। 'ब'से बुराई, 'ल'से लय। जो बल बुराई को लय कर सकने वाला हो, नाश करने वाला हो वही बल है। और जो बुराई को फैलाने वाला हो वह क्या बल कहलायगा ?

"ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु" मेरी टांगों का ओज मेरा हो। ओज वह वस्तु है जिस से सामने खड़े व्यक्ति पर छाप पड़ जाती है। वह अधीन बन जाता है।

अगर यज्ञ करने वाला साधक काल्पनिक तौर पर अंग स्पर्श न करे तो अपने संकल्पों से जल द्वारा इन अंगों को वह सम्मोहित (mesmerised) कर दे। जब प्रतिदिन ऐसा अभ्यास हो तो क्यों न फिर बल शक्ति का विकास हो। पर शोक की बात है कि हमारी सब क्रियायें अज्ञानता के कारण विफल सी रहती हैं। परमात्मा करे हम सब में ऐसी श्रद्धा उत्पन्न हो कि हम अपने आप को यज्ञ क्रिया से पवित्र और स्वतंत्र बना सकें।

सतरहवीं झांकी

यज्ञकुण्ड की जलनाली का रहस्य—

"ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा" इत्यादि मंत्र का रहस्य—

केवलकृष्ण जी बड़े श्रद्धालु और धर्म से प्रेम रखने वाले थे। आज प्रातःकाल महात्मा जी को बुलाने आ गये कि महाराज! आओ, मेरे घर पर हवन करें। महात्मा ने कहा, आपने कल तो कहा नहीं।

कृष्ण—मैं केवल नित्यकर्म के लिये आपको बुलाने आया हूं कि मेरे साथ कर लेवें। मैंने कोई विशेष यज्ञ नहीं कराना, न लोगों को सूचना दी है।

महात्मा—यह विचार क्यों पैदा हो गया? क्या मेरे पास हवनकुण्ड नहीं है, या मैं स्वयं नहीं कर सकता।

कृष्ण—न महाराज, मेरा यह भाव तो नहीं, मुझे ऐसे विचार आ गया कि इस बहाने से वेदी की नाली और पानी का अभिप्राय पूछ लूंगा।

महात्मा—तो ठीक है, लो आओ, यहां ही बैठ जाओ, मैं अब हवन करूँगा, मेरे साथ ही कर लो, और पूछ लो, जो बात दिल में उठी है।

कृष्ण—नाली के पानी के सम्बन्ध में हम तो ऐसा सुनते आते हैं कि कीड़े मकोड़े अन्दर न जा सकें पर आध्यात्मिक अर्थ तो और होगा?

महात्मा—एक वैदिक शब्द के जैसे कई अर्थ होते हैं, ऐसे यज्ञ की या वेद की क्रियाओं के कई अभिप्राय होते हैं। जो कुछ आपने सुना कि कीड़े मकोड़ों की रक्षा होती है, यह भी ठीक है दूसरा अभिप्राय यह है। हमारे पूर्वज बड़े सुविज्ञ थे, दूरदर्शी थे। वे अपने बालकों और शिष्यों को बिना मस्तिष्क पर बोझ डाले ऊँची बातें सिखा देते थे। वे पुरुषार्थ तो केवल आध्यात्मिक उन्नति के लिये कराते थे। देखो! जब अग्न्याधान के मन्त्र से इस वेदी को पृथ्वी आदि तीन लोकों को दे दिया तो पृथ्वी के चारों ओर पानी ही पानी है। ऐसी मन्त्रों द्वारा क्रिया कराके मस्तिष्क में बिठा दिया कि पृथ्वी के चारों तरफ़ ऐसे समुद्र जल है। तीसरा अर्थ यह है, देखो यह हवन कुण्ड है, हवन कुण्ड के बीच का भाग प्रकाश लोक है और जिसपर यजमान का स्थान है वह मृतलोक पृथिवी है। इन दोनों के मध्य में जल की नाली है। निष्कर्ष तीन लोक—भूः (बैठने का स्थान), भुवः (नाली जलभरी) और स्वः (प्रकाश) बन गये। हम ने अब पृथ्वी लोक से प्रकाश लोक में पहुँचना है।
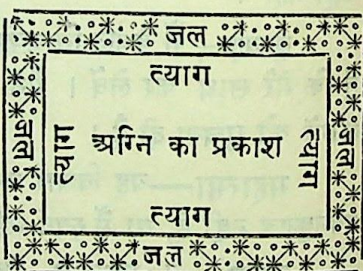
	जल	
	त्याग	
जल त्याग	अग्नि का प्रकाश	त्याग जल
	त्याग	
	जल	
	श्रद्धा	
	पृथिवी	

इस नाली के दो किनारे हैं। जो किनारा यजमान की तरफ़ पृथ्वी पर है वह श्रद्धा का है और जो किनारा पार का प्रकाश की (कुण्ड) की दीवार सा है वह त्याग का है। श्रद्धा और त्याग के मध्य में प्रेम का जल भरा हुवा है और यह प्रकाश रूपी अग्नि की रक्षा करने के लिये बह रहा है। अग्नि अपनी प्रकाश रूपी ज्वाला से प्रेम के जल को अमृत के रूप में भाप बना "भूः" से ऊपर के

"भुव:" लोक में ले जा रही है और "स्व:" लोक का सम्बन्ध जोड़ रही है।

यदि श्रद्धा का किनारा टूट जाय (श्रद्धा यज्ञ में टूट जाय) तो प्रेम (यज्ञ रूपी जल) मृत लोक मिट्टी में मिल जायगा। बिना श्रद्धा यज्ञ तम रूप हो जायगा। अगर अन्दर की तरफ़ का किनारा त्याग टूट जाय तो अग्नि ही बुझ जाय (त्याग के बिना यज्ञ की मृत्यु है)। इस लिये यज्ञ के मुख्य अंग श्रद्धा और त्याग हैं।

'ओ३म अयन्त इध्म आत्मा जातवेद...' की पांच आहुतियों के पश्चात् जब अग्नि कुंड चारों ओर से प्रकाशमान् हो रहा होता है तो कुंड के चारों ओर जल की क्रिया होती है, नाली जल से भर दी जाती है। इसका अभिप्राय यह भी है कि जब मनुष्य को पांच चीज़ें—स्वास्थ्य, प्रजा, पशू, ब्रह्मवर्चस् और अन्नादि—मिल जावें तो फिर उसे शान्ति आ जानी चाहिए और सर्व संसार के प्राणियों के साथ प्रतिज्ञा अनुसार 'इदमग्नये इदन्न मम' चारों ओर पानी नाली में डाला जाता है, जो शान्ति और संसार के उपकार का एक मात्र चिह्न है।

इष्ट कर्म का करना और आध्यात्मिक लाभ की आशा करना ही आस्तिकता का स्वरूप है। जिसका प्रभु की विभूतियों और आत्मिक प्रेरणाओं पर विश्वास न हो वह सच्चे हृदय से इन कर्मों में प्रवृत्त नहीं हो सकता। अरुचिपूर्वक किया हुआ कर्म ग्लानि ही पैदा करता है। इन कर्मों का भौतिक रूप लोगों के सामने रहता है। भौतिक प्रेरणा का फल भी भौतिक ही होता है। आत्मिक कल्याण के भाव से किया हुआ यज्ञ एक प्रकार के अदृष्ट फल को

पैदा करता है। जब यजमान के साथ इस का संबन्ध हो जाता है तो वह स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है। अर्थात् यज्ञ का परिपक्व फल आत्मिक विकास के पूर्ण होने पर ही अनुभव होता है, पहले नहीं। इसी अवस्था को स्वर्ग या मोक्ष की अवस्था कह सकते हैं।

कृष्ण — पांच वार जो आहुतियां "ओं अयन्त इध्म आत्मा" आदि मन्त्र से दी जाती हैं उन में क्या भावना रखनी चाहिये ?

महात्मा—प्रत्येक गृहस्थी को पांच चीज़ों की उन्नति की आवश्यकता है। प्रतिदिन पांचों चीज़ें इस मन्त्र में मांगी गई हैं। एक एक मन्त्र के साथ एक एक भावना करनी चाहिये। जो भावना हो उसी शब्द पर ज़रा ज़ोर हो ताकि बोलते समय मन पर प्रभाव पड़े। जो मन में है वही वाणी पर हो और जो वाणी पर है वही 'स्वाहा' के कहने पर हाथ की क्रिया से हो।

इससे दो लाभ हैं। एक तो अपने मन पर प्रभाव पड़ता है दूसरा आहुति न्यूनाधिक नहीं होती। नहीं तो बहुत बार यज्ञ करने वाले का ध्यान कहीं और होता है और मन्त्र पढ़ता है तो पता नहीं रहता कि पांच आहुतियां पूरी हो गईं या न्यूनाधिक हुईं। कभी चार आहुति देकर पानी का लोटा उठाने लग जाता है, कभी छः दे बैठता है। मन्त्र उच्चारण करते समय शब्द के अर्थ के साथ हृदय में संबन्ध बनाता जाय और उन विशेष शब्दों पर अर्थ के साथ भावना को जोड़ लेवे। पहली भावना तो 'चेद्धवर्धय" पर; अर्थात् हे जातवेद अग्ने ! जैसे तू इस काष्ठ रूपी अपनी आत्मा से उन्नत होती, प्रकाशित होती है ऐसे (च) और हम को भी "इध्यस्व" चमकाओ, प्रकाशित करो। तेजस्वी, ओजस्वी, यशस्वी करो। दूसरी "प्रजया" शब्द पर भावना, पुत्र पौत्रादिक सन्तान से बढ़ाओ। यहां "प्रजया"

का अर्थ केवल साधारण सन्तान न समझना। यज्ञ करने वाले को जो सन्तान मिलती है वह "प्र" का अर्थ है प्राप्त करने वाली और "जया" विजय, जो सदा जय को प्राप्त होने वाली होती है। ऐसी भीरु, दुर्बल, अयोग्य सन्तान नहीं होती जो हार पाती रहे।

तीसरी "पशुभि" शब्द पर भावना, गौ, बैल, घोड़े, हाथी से बढ़ा। चौथा "ब्रह्मवर्चसेन" शब्द पर भावना, ज्ञान, तेज, या ब्रह्म जानने वाले महात्माओं के ओज से बढ़ा। पाँचवीं 'अन्नाद्येन" शब्द पर भावना, खाने योग्य अन्न से, सब खाद्य पदार्थों से हमें बढ़ा। प्यारे कृष्ण ! मेरा तो विश्वास है कि यदि गृहस्थी शुद्ध भावना के साथ प्रातः सायं स्त्री पुरुष मिलकर अग्निहोत्र करें तो वे गृहस्थी इन पांच वस्तुओं से कभी ख़ाली नहीं रहेगा। आज गृहस्थी सन्तान के लिये रोते हैं। किसी के सन्तान नहीं होती तो दवाइयां करता फिरता है और किसी के होती है तो वह सन्तान अयोग्य और कमज़ोर माता पता को कलंकित करने वाली होती है।

यज्ञ करने वाले की गोद कभी ख़ाली नहीं रह सकती, सदा हरी भरी रहेगी। दुष्काल क्यों न पड़ जाय, किन्तु उसके पास ईश्वर की कृपा से अन्न की कमी न होगी। दूध भले वह आलस्य से न पीवे परन्तु उसके हां दूध की सामर्थ्य रहेगी। प्रायः माताओं को बच्चे को जन्म देकर, स्तनों में दूध सूख जाने से या दूषित दूध होने से दूसरों के मुख की ओर ताकना पड़ता है, बच्चे को पालन करने के लिये अग्निहोत्री गृहस्थी को यह कष्ट न होगा।

दूसरी बात जिसका मैं तुम्हें ध्यान दिलाना चाहता हूं। उस को भी सुनो। वह आप की वृत्ति के अनुसार है। सन्तान, पशु,

अन्न तो साधारण भी चाहते हैं और बहुतों के पास है भी, परन्तु यज्ञ करने वाले के भाग्य तो यह हैं कि वह योगियों और परमेश्वर के जिज्ञासुओं के तेज से युक्त होना चाहता है। छान्दोग्योपनिषत् में लिखा है कि ऋषि श्वेतकेतु यात्रा से लौटकर जब अपने शिष्य को देखते हैं तो शीघ्र ही ये शब्द उनके मुखारविन्द से निकलते हैं, कि "ब्रह्मविद् इव सौम्य ते मुखं भाति" हे प्रिय! तेरा मुख परमेश्वर को जानने वालों के समान चमक रहा है। साधु महात्माओं के शिर की छवि सारे संसार में प्रसिद्ध है, सो इस तेज को प्राप्त करने की कामना इस मन्त्र में की गई है।

कृष्ण—हम प्रतिदिन इस मंत्र द्वारा पांच वार आहुति देते हैं और पांच पदार्थों के प्राप्त करने की परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। यज्ञ के द्वारा जो पदार्थ मांगा जाता है, वह अवश्य मिलता है परन्तु हम कोरे रह जाते हैं। क्या यज्ञ इष्टकामधुक् नहीं है?

महात्मा—यज्ञ तो इष्टकामधुक् है परन्तु परमात्मा भी क्या करे? कैसे दे? किसे दे? कहां दे? बालक रो रहा है। यज्ञ शेष बांटा जा रहा है। मुझे भी मिले। रोता हुवा कहता है, मुझे बहुत दो, थाली भर दो। बांटने वाले ने कहा, लो। बालक ने हाथ किया। उसको भर दिया परन्तु थाली नहीं दी। बालक रोता है, सारी थाली दो। हाथ उसका छोटा सा है, वह तो भर गया है। अब बांटने वाला कहां देवे? कैसे देवे? वह कहता है, लो; परन्तु हाथ में स्थान नहीं। ऐसे ही प्रभु इस मंत्र में मांगी हुई वस्तुओं का यज्ञ शेष देने के लिये तैयार है परन्तु लेने वाले के पास स्थान नहीं।

[१] प्रकाश मांगा। प्रकाश का स्थान है, अन्तरिक्ष, जो

खाली हो। हृदय अन्तरिक्ष है परन्तु वह खाली नहीं। द्वेष अग्नि से पहिले जल रहा है। अब प्रभु प्रकाश कहां प्रकट करें ?

[२] प्रजा मांगी। प्रजा के लिये स्त्री चाहिये। और फिर स्त्री पुरुष कैसे हों ? प्र—प्राप्त करने वाली, जया-जय को प्राप्त करने वाली जब सन्तान मांगी तो दोनों स्त्री पुरुष पवित्र हों, बलवान् हों, नीरोग हों।

[३] पशु मांगे। पशु के लिये स्थान हो और उसके लिये आहार की सामग्री हो, यह धन आदि का काम है। धन मिलेगा पुरुषार्थ से। मनुष्य आलसी न हो, पुरुषार्थी हो। पशु में चूहे से लेकर हाथी तक पशु हैं परन्तु जिन पशुओं से मनुष्य की आत्मा का संबन्ध है अर्थात् जिन के संबन्ध से मनुष्य की आत्मा प्रयत्न-शील बन सकती है, वह पशु मनुष्य की दृष्टि में रहते हैं।

[४] ब्रह्म वर्चस मांगा यह चीज़ सब से कठिन है। यह मिलती है भक्ति से, ब्रह्म की समीपता से। भक्ति बिना ब्रह्मचर्य के नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य तो पहलवान भी रखता है परन्तु ब्रह्म-वर्चस उस में नहीं आता। वेद में प्रार्थना की गई है:—

ओ३म् तेजोऽसि तेजोमयि धेहि वीर्यमसि वीर्यमयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजोमयि धेहि मन्युरसि मन्युंमयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

यजु० अ० १६ मंत्र ६।

एक तेज को प्राप्त करने के लिये पांच चीज़ों का संग्रह पहले चाहिये। तेज मिलेगा वीर्य से, वीर्य मिलेगा बल से, बल मिलेगा ओज से, ओज को प्रकट करने वाला मन्यु है। मन्यु सहन शक्ति से,

धैर्य से आता है। सात्विक आहार से ओज बनाया जाता है। ६० कतरा दूध से एक कतरा घी, ६० कतरा घी से एक कतरा रक्त, ६० कतरा रक्त से एक कतरा वीर्य और ६० कतरा वीर्य से एक कतरा ओज बनता है। विषय वासनाओं का विरोध मन्यु द्वारा किए विना ओज उत्पन्न नहीं होता। अतः ब्रह्मवर्चस के लिये अति तपस्या की आवश्यकता है।

[५] अन्न मांगा गया है। यह पांचवीं चीज़ है। यही भोग है। मनुष्य इस भोग के लिये जो सब से आखीरी चीज़ है, जो अदृष्ट है और प्रभु ने अवश्य देनी है, अपनी सारी आयु इसी में लगा देता है। बाकी चीज़ों का विचार ही नहीं, जिस से मनुष्य का छुटकारा होता है।

यदि प्रकाश नहीं, तो सन्तान किस काम की? मोह में पड़ कर आवागमन का चक्कर ही काटना पड़ेगा। यदि प्रकाश है, सन्तान नहीं, तो पशु किस के लिये? दूध मक्खन किस के लिये? यदि सन्तान और पशु हैं और ब्रह्मवर्चस नहीं तो, बन्धन। यदि अन्न है और भक्ति नहीं, तो पशु से अधिक क्या मूल्य है? यह सब कुछ कैसे हों? 'इदम् अग्नये इदन्नमम' अर्थात् मैं प्रकाश मांगता हूँ तो अपने लिये नहीं परन्तु प्रभु अर्पण करने के लिये। सन्तान अपने लिये नहीं, भु अर्पण के लिये। पशु, भक्ति और अन्न 'इदन्नमम' अपने लिये नहीं 'इदमग्नये' सब भगवान् की पूजा के लिये मांगता हूँ। ऐसा उपासक अग्नि होत्री कहलाता है।

कृष्ण—यह तो गृहस्थी के लिये आप ने कहा परन्तु वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी भी तो इस मन्त्र को पढ़ता है, वह भी तो पांच वार आहुति देता है।

महात्मा—भाई मेरे ! [१] प्रकाश [२] पशु [३] ज्ञान तेज या महात्माओं का संग [४] अन्न-ये चार वस्तुएँ तो वानप्रस्थी को भी चाहियें और ब्रह्मचारी को भी। शेष रही प्रजा, सो प्रजा का अर्थ, सन्तान, परिवार, सहपाठी, शिष्य, यजमान, प्रजा और भृत्य, सेवक के भी हैं। वानप्रस्थी का शिष्य मण्डल ही प्रजा है। ब्रह्मचारी का परिवार उसके सह पाठी, गुरु के कुल के वासी हैं। ब्राह्मण के लिये प्रजा उस के यजमान, राजा के लिये प्रजा, उसकी अपनी प्रजा (रियाया) है। वैश्य के लिये भृत्य सेवक, गुमाशते, परिवार पुत्र पौत्र होते हैं।

तीनों वर्णों वाले जब भी आहुति देवें, अपने वर्णानुकूल इस अग्नि की ज्वाला में दृष्टि रखकर यही उद्देश्य या भावना करनी चाहिये। ब्राह्मण सदा प्रकाश की भावना करे। क्षत्रिय अग्नि के भस्म करने के गुण को देख कर यह भावना करे कि जैसे अग्नि पर जो आक्रमण करता है तो अग्नि उसे भस्म कर डालती है, ऐसी मुझ में शक्ति आवे कि मैं पापी, दुरात्मा, प्रजा के दुःख देने वाले शत्रुओं को भस्म करदूं। वैश्य अग्नि के स्वर्णमय वर्ण को देखकर स्वर्ण वृद्धि की इच्छा करे।

कृष्ण—ये सब अर्थ तो सकाम हुवे, अतः अग्निहोत्र के समय हमारी भावना तो सकाम ही रहेगी।

महात्मा—इसके आगे "इदमग्नये इदन्न मम" कहने से सारी भावना शुद्ध हो जाती है। पाञ्च वार पाञ्च वस्तुएँ मांगोगे और पाञ्च वार "इदन्न मम" कहोगे।

कृष्ण—वह तो घी सामग्री की आहुति "स्वाहा" कहने पर

छोड़ दी और कह दिया कि अब यह मेरा नहीं रहा, अग्नि के लिये है।

महात्मा—यही रहस्य की बात है। बाह्यक्रिया तो चिह्न मात्र है। करके दिखाया कि ऐसा मैं चाहता हूँ या प्राप्त होने पर ऐसा करूँगा, जैसा अब सचमुच अग्नि की भेंट आहुति कर दी है। शुद्ध भावना यह है कि मैं यह प्रकाश पाकर प्रभु के अर्पण करूँ। प्रजा, पशु, तेज, ज्ञान, अन्न पाकर भी मैं अपना न समझूंगा। अपितु वास्तव में जो अग्नि स्वरूप प्रभु है उसके अर्पण करूँगा। उसकी सन्तान के लिये त्याग करना प्रभु के अर्पण करना है।

कृष्ण—महाराज! साधारण मनुष्य तो ऐसी भावनायें नहीं करता।

महात्मा—आर्य जीवन सांसारिक तथा पारलौकिक ऐश्वर्य की कामना करता है। साधक की कक्षानुसार उसकी रुचि बदलती रहती है। पर साधारणतया प्रत्येक मनुष्य की यह कामना होनी चाहिये कि मेरा शरीर उन्नत हो, ज्ञान बढ़े, यशस्वी बनूँ, और परोपकार करता रहूँ। इन कामनाओं का संकेत आहुति देते हुए आत्मसमर्पण के भाव द्वारा कराया जाता है।

एक एक आहुति को स्वर्गप्राप्ति का साधन बनाना चाहिये। प्रभु की रचना में प्रत्येक छोटा और बड़ा देवता यज्ञ कर रहा है, तो मैं क्यों छः छः माशे की आहुति डालकर "मेरा मेरा" करके तुच्छ बनूं? क्यों न देवताओं के मण्डल का सदस्य बनूं? एक हाथ से दूं और दूसरे हाथ को पता न लगे, यह भाव आहुति के साथ साथ पैदा करो, तो बेड़ा पार है।

अठारहवीं झांकी

इदन्न मम—

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागेगा मोर?

केवलकृष्ण जी प्रातःकाल का हवन करके घर चले गये और अपना कामकाज करते रहे। पर इनको बार बार शंका होती रही कि महात्माजी ने कहा है "मेरा मेरा" करने से मनुष्य तुच्छ बनता है। अब अगर किसी चीज़ में मेरापन न आवे तो उसकी रक्षा नहीं होती। मां बच्चे को अपना पुत्र न समझे तो उससे प्यार न करे, उसका पालन-पोषण न कर सके। अनाथ, जिसके माता पिता मर जाते हैं, उस को मेरा या अपना कोई नहीं जानता। तभी वह अनाथ और दुःखी रहता है। धनी आदमी मेरापन त्याग दे तो एक पैसा भी कोई न रहने दे, मुँह की आई रोटी भी उठा लेवें। संसार ऐसा बना हुआ है। सारा दिन काम करते हुए शंका बनी ही रही। सायंकाल अवकाश पाकर फिर महात्मा जी के पास आया और नमस्ते कहकर बैठ गया।

महात्मा—क्यों फिर कोई और बात कहनी है? अकेले ही आते हो।

कृष्ण—हां महाराज! लोगों में प्रश्न तो करना चाहता हूं किन्तु मुझ से वर्णन नहीं किया जाता। लज्जा आ जाती है। इस लिये अकेला आता हूं कि अगर बात को नहीं कह सकूंगा तो फीका तो न होऊंगा।

महात्मा—यही तो अहंकार है, श्रीमन्! प्रतिदिन "इदन्न मम" कहते हो परन्तु ममत्व नहीं गया। हां, आप भी सच्चे हो। आप तो घी सामग्री के लिये "इदन्न मम" कहते हो, न कि अपने ममत्व का।

कृष्ण—हां, इसी शंका को लेकर आया हूँ। परन्तु महाराज! मैं तो लज्जावश नहीं कह सकता। अहङ्कार तो नहीं करता।

महात्मा—समझने में भेद है। कहते जैसे भी रहो। लज्जा इसलिये आती है कि अगर अशुद्ध वर्णन कर दिया या वर्णन ही न कर सका तो लोग हंसेंगे या तुम स्वयं अपमान अनुभव करोगे। लज्जा अनुभव नहीं होती। कहो अपमान अनुभव होगा? अपमान का समझना बिना अहङ्कार के नहीं। छोटे बच्चे को गाली दो तो वह अपमान नहीं समझता। किन्तु जब वह बड़ा हो जावे उसे गाली दो तो तेज़ हो जाता है। तब वह उस चीज़ को जिस की गाली दी उससे ममता रखता है। खैर, इसे जाने दो। अब ममता को तनिक ध्यान से सुनो।

एक मकान है। मैं कहता हूँ, मेरा है। पिता कहता है, मेरा है। भाई कहता है, मेरा है। पुत्र कहता है, मेरा है। पर है वह ईंटों का, और अगर चार भाई हों और पृथक् पृथक् होने लगें तो वही मकान जिसे सब मेरा मेरा कहते हैं, अब उसकी चौथाई चौथाई उनको मिलेगी। किसी के पास एक लाख रुपया धन है और बांट

लिया गया तो कम हो जायगा। मेरा घोड़ा है। अगर मैंने बेच दिया, अब मेरापन इससे हट गया। एक शरीर ही है जिसके साथ किसी का सम्बन्ध नहीं। मां ने अपने पेट से उत्पन्न किया परन्तु वह नहीं कह सकती कि यह शरीर मेरा है। भाई नहीं कह सकता कि यह शरीर मेरा है। सारांश यह कि पिता मित्रादि किसी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। केवल मैं ही अपने शरीर के विषय में कह सकता हूँ कि यह शरीर मेरा है या मेरा शरीर है। चाहे मैं इस शरीर से किसी की नौकरी करूँ तो भी यह शरीर मेरा है, मेरे स्वामी का नहीं। अब इस शरीर को देखो, जिस पर कोई अपना अधिकार नहीं जमा सकता और मैं, चाहे अमीरी हो या ग़रीबी, सुख हो या दुःख, रात्रि हो या दिन, वन हो या नगर, सब में कह सकता हूँ यह शरीर मेरा है और संसार के सब सम्बन्धी या वस्तुएँ किसी न किसी समय मुझ से पृथक् भी होती हैं परन्तु यह शरीर किसी क्षण में भी मुझ से दूर पृथक् नहीं। किन्तु सोचो तो ज़रा, इस शरीर के मुख को तो देखो, आंख तो मेरी है, यह कह सकता हूँ पर रूप मेरा नहीं और रूप के विना आंख निरर्थक है अर्थात् मेरी जो वस्तु है वह तो अपने आप निष्प्रयोजन है और रूप के विना तो आंख को आंख तो कहता ही कोई नहीं और रूप है मेरे प्रभु का, जिसके कारण से मेरी आंख आंख कहलाती है। उसकी समझें या न? कान तो मेरा है पर शब्द मेरा नहीं। जिह्वा तो मेरी है पर रस मेरा नहीं। अहा! नासिका तो मेरी है पर प्राण मेरा नहीं। जब प्राण, श्वास मेरा नहीं तो शरीर मेरा कैसे है? निरर्थक है। प्राण तो मेरे प्रभु का है। बस जिस का प्राण है उसी का यह शरीर है और जिसका यह

शरीर है, सब कार्य जो शरीर से किये जाते हैं, वे उसी मेरे प्रभु के हैं। बस, अब बतलाओ, ममता कहां रही। अग्निहोत्री यज्ञ करने वाला तो इसी सिद्धान्त को समझ कर कहता है "ओं अग्नये इदन्न मम"।

दूसरा पहलू भी समझो जिस भूमि पर हवनकुण्ड बनाया गया, उस भूमि को भी तो प्रभु ने पैदा किया, मैं ने नहीं किया। जिस यन्त्र से खोदा वह लोहे का है, लोहा भी तो प्रभु ने पैदा किया। क्या कोई वैज्ञानिक लोहे की खान पैदा कर सकता है ? और जिस घी से आहुति दी वह गाय आदि पशुओं ने केवल घास चर कर पैदा किया। क्या मैं या आप सामर्थ्य रखते हैं कि इस घास से घी या दुग्ध बना लेवें ? प्रभु की कला है जो किस प्रकार एक चीज़ का परिवर्तन अनेक रूपों में करके संसार के प्राणियों की भलाई कर रहा है। जिस हाथ से स्रुवा पकड़ कर आहुति दी है, ये हाथ भी मेरे प्रभु ने घड़े हैं, मेरी माता ने तो नहीं बनाये। यदि वह इन को लूला ही बना देता तो मैं स्रुवा कैसे पकड़ता। यह हाथ और हाथों में सामर्थ्य भी मेरे प्रभु की ही है। सब से श्रेष्ठ बात यह है कि जिस मन से मैं यज्ञ कर रहा हूं, उस मन का बनाने वाला और उस मन में श्रद्धा उत्पन्न करने वाला भी मेरा भगवान् ही है। यदि श्रद्धा भगवान् की देन न होती तो सब कोई हवन न करने लग जाता ? इस लिये मैं तो समझता हूं कि यह सब प्रभु का था जो प्रभु की भेंट हुआ। न पहले मेरा था, न अब मेरा है। ऐसा ऊँचा भाव होना चाहिये, तब कोई क्लेश और चिन्ता उत्पन्न नहीं होते। संयोग और वियोग सब उसी के आधार पर हैं।

तात्पर्य यह है कि जब तू अग्निहोत्र करने लगे तो फिर यह

न समझ कि मैं अपने घर से यज्ञ कर रहा हूं। यदि तू ऐसा विचार करेगा तो अवश्य संकोच आ जाता रहेगा। मनुष्य का हृदय बड़ा संकुचित है। उदार कोई कोई होता है। वह भी सब कामों में और सब दानों में उदार नहीं हुआ करता। यज्ञ के समय तो यही समझना चाहिए कि यह लूट का माल है। इसे ऐसे लुटाना चाहिए जैसे लूटने वाले बिना किसी भय के लूटते हैं। प्रभु के ख़ज़ाने से आई हुई देन लूट के समान ही होती है। वह जिसे अपने अन्दर दाख़िल होने देता है, उसे कहता है, लूट ले, जितना चाहे लूट। जो दिनों में राजा बन जाते हैं, वह कैसे बन जाते हैं? इसलिये यज्ञ करने वाले को अपनी देने वाली आहुति अपनी समझ कर नहीं देनी चाहिए।

उन्नीसवीं झांकी

आत्मिक विकास के चार क्रम

आघारावाज्याहुति

कृष्ण—अब मेरी समझ में आ गया कि "इदन्नमम" का वास्तविक प्रयोजन क्या है। आघारावाज्याहुति चार, जो दी जाती हैं, उत्तर, दक्षिण और मध्य में, उनका भी कोई विशेष अभिप्राय होगा ?

महात्मा—पहली दो आहुति उत्तर, दक्षिण वाली का नाम तो आघार है, और दो मध्य वाली का नाम आज्याहुति है।

'आज्या' तो घी को कहते हैं और 'आघार' पिघलाने को कहते हैं। अर्थात् पिघले हुए घी से आहुति देनी।

अग्नि, सोम, प्रजापति और इन्द्र ये आत्म विकास के चार क्रमों के संकेत जानने चाहियें। ये सब नाम ईश्वर के हैं और उसी के अर्पण आहुति होती है। कई विद्वान् ऐसा अर्थ भी लगाते हैं कि उत्तर दिशा में जो आहुति दी जाती है वह अग्नि अर्थात् विद्वान् ब्रह्मविद् के निमित्त है। इस आहुति से हमारा उन से संबन्ध हो और हम को प्रकाश मिले। दूसरी दक्षिण में वह सोम के लिये है। सोम अर्थात् शान्ति का विस्तार करने वाले, रोगों को दूर करने

वाले वैद्य राजों से हमारा संबन्ध हो ताकि उन से हमें शान्ति मिले।

मध्य की दो आहुतियां प्रजापति अर्थात् गृहस्थी, इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् से संबन्ध जोड़ने के लिये दी जाती हैं। क्योंकि सद्गृहस्थी और ऐश्वर्यवान् ही सब ब्रह्मचाहियों, वानप्रस्थियों और संन्यासियों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, और गृहस्थी की भी गृहस्थियों और ऐश्वर्यवानों की वृद्धि के लिये शुद्ध भावना हो ताकि परस्पर संसार के मनुष्यमात्र का एक दूसरे से संबन्ध शुद्ध भाव से बना रहे। जैसे घी अग्नि पर पड़ने से वह बढ़ती है, चमकती है, ऐसे ही ये सब विद्वान, वैद्यराज, गृहस्थी, ऐश्वर्यवान बढ़ें।

दूसरे, आत्म विकास के लिये अग्नि अर्थात् ज्ञान, सोम अर्थात् शान्ति, प्रजापति अर्थात् इन्द्रियों का पति मन और इन्द्र= जीवात्मा अर्थात् ज्ञान और शान्ति बढ़ कर वे मन और आत्मा की रक्षा के लिये हों।

भक्त—अग्नि के लिये उत्तर दिशा में और सोम के लिये दक्षिण दिशा में आहुति क्यों दी जाती है? प्रजापति और इन्द्र के लिये मध्य में आहुति क्यों दी जाती है?

महात्मा—(१) (अग्नि) प्रकाश तो होगा ज्ञान से। इस का स्थान शरीर में मस्तिष्क में है। यह उत्तर स्थान है। इसलिये तो नाम करण संस्कार में भी ग्यारह दिन के बच्चे का सिर माता उत्तर की तरफ़ रख कर आती है।

(२) (सोम) शान्ति मिलेगी त्याग से। इस का स्थान है हृदय। यह मस्तिष्क से दक्षिण में है। शान्ति भी हृदय में होती है और त्याग भी हृदय से हो सकता है, इस के बिना नहीं।

(३) प्रजापति तो तब बन सकता है जब प्रजा का पालक, पोषक और रक्षक बने। पालन, पोषण और रक्षण सब रस के द्वारा होता है। प्रत्येक वस्तु में रस मध्य में होता है। जो सब जगत् के पालने-पोसने और रक्षा का वसीला है, वह पसारा भी मध्य में है। इसलिये यह आहुति मध्य में दी जाती है। पालन, पोषण और रक्षण का कार्य भी बिना त्याग के नहीं होता। इसलिये त्यागी ही प्रजापति है।

(४) इन्द्र तो तब बने जब इस में चमक [तेज] हो। इस चमक [तेज] के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये ज्ञानी ही इन्द्र होता है। चमक और तेज अग्नि और ज्ञानी के अन्दर होता है। अतएव मध्य में ही यह आहुति दी जाती है।

मनुष्य शरीर में भी कण्ठ और नाभि दो स्थान मध्य के हैं। कण्ठ इन्द्र का स्थान है और नाभि प्रजापति का।

'स्वः पुनातु कण्ठे' 'जनः पुनातु नाभ्याम्' इस सचाई की तरफ़ संकेत करते हैं। नाभि इस सारे शरीर की, प्रजा की पालक पोषक है। 'संसार की नाभि यज्ञ भी सारी प्रजा का पालक पोषक है। नाभि से, यज्ञ से ही जनन-शक्ति कायम रहती है और प्रजा उत्पन्न होती है।

स्वप्न के समय कण्ठ में जीवात्मा रहता है। मृत्यु के समय भी जीवात्मा कण्ठ में आ जाता है। जीवात्मा इन्द्र है और स्वप्न में इसे स्वयं प्रकाश होता है और मृत्यु के समय भी बाहर की सब ज्योतियां इससे दूर होती हैं। यह भी ध्यान में रहे कि यज्ञ का आदेश है. ज्ञान, शान्ति अपने लिये, और संसार के लिये कर्म, पुरुषार्थ, दान, त्याग, प्रजा का बढ़ाना। बस, हम देखते हैं कि

(१) आत्मा की शान्ति का साधन ही ज्ञान है। कर्म के लिये भी आत्मा के अन्दर पूर्ण व वास्तविक ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान का स्थान मस्तिष्क—उत्तर—में है। मस्तिष्क में ही ध्यान लगाने से "देवमुत्तरावन्तं सनातनम्" के दर्शन होते हैं। जो उसके समीप हो गया, जिसने, उसकी उपासना की, वह विचार-शील, तथा उपकारी कर्मशील हो जाता है और उसके पास भोग्य पदार्थ अन्न, धन, प्रजा बहुत हो जाती है। सो पहला क्रम, यथार्थ ज्ञान का है। यह तो हुआ आत्मा का कल्याण।

(२) अब दूसरे क्रम पर शरीर है। यह भोग का साधन है। शरीर के स्वास्थ्य का रक्षक वैद्य डाक्टर है। सोम स्वयं वैद्य है। यह संजीवनी बूटी है। कायाकल्प करने वाली औषधि है, इससे बूढ़ा जवान रहता है। यह रस दक्षिण दिशा में मिलता है। दक्षिण दिशा जल की है। यह नीचे की दिशा है, निचला भाग त्याग का है। सो शान्ति त्याग से ही मिलती है। उत्तर दिशा ग्रहण की है। ज्ञान से ग्रहण करो। त्याग से शान्ति प्राप्त करो। ऊपर के भाग में ज्ञानेन्द्रिय हैं। ग्रहण किये हुवे ज्ञान का भी अपने से छोटों के लिये त्याग होना चाहिये, उनके उपकार और भलाई के किये।

आत्मा और शरीर के कल्याण को प्राप्त करके ज्ञान और शान्ति को प्राप्त करके हमने प्रजापति के ऋण से उऋण होना है। प्रजापति अन्न दाता है जो शरीर का पालन-पोषण करता है; यह गृहस्थी है; ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों, त्यागियों और अभ्यागतों के लिये। और गृहस्थी के लिये प्रजापति वह है जो प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ बनाता है, उदाहरणार्थ—सास, ससुर। इनका भी ऋण होता है। फिर राजा का भी ऋण होता है; उससे भी उऋण

होना है। ये सब प्रजापति त्याग से ही बनते हैं। परन्तु त्याग वह हो जो शान्ति पैदा करे, यदि शान्ति पैदा नहीं करता तो वह त्याग नहीं है। "ओं इन्द्राय स्वाहा" यह आहुति इन्द्र के लिये है। यदि हम इन्द्रियों के स्वामी हैं तब तो इन्द्र हैं, स्वर्ग के राजा हैं। शरीर सचमुच अयोध्या नगरी बन जावे। उसमें युद्ध न हो रहा हो, कोई इन्द्रिय विद्रोही न हो। अतः हमें इन्द्र बनने के लिये यज्ञ करना चाहिये। इसके लिये तीन शर्तें हैं।

१. अग्नि, ब्राह्मण और विद्वान की सेवा करो, ज्ञानोपार्जन से और ज्ञानदान से। २. शरीर हृष्ट पुष्ट करो, शान्ति की प्राप्ति और सोम रस के पान से। ३. अन्न, धन, प्रजा आदि भोग को बढ़ाओ लोक कल्याण के लिये, भगवत् प्राप्ति के लिये।

बीसवीं झांकी

हवि—(एक अंक (ओंकार) की प्राप्ति)—स्वाहा

भक्त—आपने एक बार कहा था कि उपस्थित सज्जन जो मन्त्र नहीं भी जानते उनको भी शब्द "स्वाहा" गुंजाकर बोलना चाहिये, ऐसा करने का क्या लाभ है ?

महात्मा—स्वाहा का वर्णन करने से प्रथम ज़रा "इदन्नमम" शब्द जिस का पीछे कुछ वर्णन किया है, इस समय उसके सम्बन्ध में कुछ और याद आ गया है, पहले उसे सुन लीजिये:—

यज्ञ (अग्नि) में पड़ी आहुति विभक्त हो जाती है। विभाग में जब सारे का सारा बांट दिया जावे तो भाग फल एक होता है और शेष शून्य रहता है, जैसे $\begin{array}{r|l} & 1 \\ 3 & 3 \\ & 3 \\ & 0 \end{array}$ और घटाने में, सारे में से सारा ऋण करने से केवल शून्य रहता है।

भाग में यज्ञ के अन्त में जब स्वाहा कहकर "स्व" अपना "आहा" त्याग दिया जाता है और "इदन्नमम" अपना ममत्व भी शेष नहीं रहता, "इदमग्नये" अर्थात् वह प्रभु का हो जाता है तो प्राप्त भी वही एक अग्नि स्वरूप प्रभु होता है। शेष शून्य के समान प्रकृति दिखाई देती है। यदि वह शून्य (प्रकृति माया) भी उठा

कर एक के संग लगा दिया जाय अर्थात् उसे दक्षिणा में दे दिया जाय, तो वह शून्य भी (प्रकृति माया) दस गुना सामर्थ्यवान् हो जाता है; जैसे वह दस (१०)। अर्थात् वह यज्ञ करने वाला अपना आत्म समर्पण (स्वाहा) करता हुआ सब संसारी माया को शून्य समझे और उसे भी प्रभु दक्षिणा में लगा दे तो उसकी शक्ति दस गुना हो जायगी। लोग कहते हैं एक के साथ शून्य लग जाय तो एक को शक्ति दस गुना हो जाती है। किन्तु नहीं, एक तो एक है ही। शून्य की कोई शक्ति अकेली नहीं। अब यदि १० से १ को हटा लें तो शून्य की कोई क़ीमत नहीं रहती। हां शून्य दक्षिणा में आ जाने से, एक की शरण से दस गुना बन जाती है।

शब्द स्वाहा का महत्व—(१) यज्ञ में स्वाहा का शब्द ज़ोर से मिलकर उच्चारण करने और आकाश गुंजाने का फल एक यह भी है कि मनुष्य के हृदय व मस्तिष्क में प्रत्येक समय कुसंस्कारों की तरंगें उठती हैं परन्तु जब मन्त्रों की आहुति पर स्वाहा ज़ोर से गुंजाया जाता है तो वह आवाज़ मस्तिष्क के अन्दर एक लहर पैदा कर देती है। ऐसे ही वह शब्द आकाश में लहरें उत्पन्न करते हैं।

उस आवाज़ का काम यह है कि उठने वाले को संस्कारों की लहरों को वह आवाज़ काट डालती है और बाहर आकाश में अशुद्ध प्रमाणु जो मनुष्य के कुसंस्कारों का स्वागत करने के लिये दौड़ते हैं वे शब्द उसे दूर दूर भगा देते हैं।

संसार में हर एक वस्तु में उसकी सत्ता को प्रकट करने के लिये उसकी अपनी आत्मा होती है, जैसे सूर्य की आत्मा प्रकाश है। बिना प्रकाश के सूर्य नाम-रहित है और बिना प्रकाश दान

करने से सूर्य निष्फल है अत: प्रभु के सब देवता इसीलिये देवता हैं कि वे अपनी अपनी आत्मा को प्रभु की प्रजा के लिये त्याग कर रहे हैं। इस त्याग का नाम यज्ञ परिभाषा में "स्वाहा" कहलाता है इसलिये प्रत्येक मंत्र के अन्त में स्वाहा कहा जाता है। जब तक मंत्र के शब्द पढ़े जाते हैं तब तक तो चरु आदि हाथ में बंद होता है परन्तु जब स्वाहा का शब्द मुख से निकलता है वह वस्तु अग्नि की भेंट हो जाती है और उसी क्षण वह फैल कर लघु से महान् बन जाती है।

जब मनुष्य किसी दुःख में होता है तो उसका स्वरूप "हा" के शब्द से प्रकट करता है और जब ख़ुशी की अवस्था में होता है तो "अहा" कहता है, किन्तु यह "स्वाहा" शब्द निराला है। यह ऐसा अमोघ शस्त्र है कि इस को समझने से दुःख सुख की सीमा से मनुष्य ऊपर हो जाता है। मिलकर ज़ोर से उच्चारण करने से जब आवाज़ आकाश में जाती है तो इसके पश्चात् आकाश में "आ" ही सुनाई देता है जो प्रभु का नाम है।

प्राण जब अन्दर लिया जाता है तो "स स" की आवाज़ निकलती है और जब बाहर निकलता है तब "हा हा" की आवाज़ निकलती है। यह स्वाहा यज्ञ का प्राण है।

स्वा + हा = अपना त्याग अर्थात् मेरा पन, किसी वस्तु और मेरे मध्य अहंकार ही स्वत्व को प्रकट करता है। जब मैं कहता हूँ कि यह मेरा मकान है तो यद्यपि मकान ईंटों का बना है, वह ईंट पृथ्वी से बनी है, वह मेरी नहीं; इस में मेरा-पन अहंकार का कारण है। जब अहंकार का नाश हो गया या इसको त्याग दिया या समर्पण कर दिया तो यही आत्म समर्पण है जो अहंकार का

नाश करता है। उस के कोई पाप निकट नहीं आ सकता; वह प्रभु का यंत्र बन जाता है।

भक्त—कई दिन से एक शंका उठी है; उसकी निवृति कीजिये। यदि स्त्री को मासिक धर्म आ जावे तो उसे हवन करना चाहिये या न ?

महात्मा—नहीं। प्रसूता स्त्री चालीस दिन तक और साधारण स्त्री रजोदर्शन में हवन न करे, उसके स्थान पर उस का पति एक मंत्र दो दो बार पढ़कर आहुति देवे। हवन करने से पहले उसे सन्देह हो तो पहले ही से सम्मिलित न हो। यदि हवन करते समय रजोदर्शन हो जावे तो उसी क्षण कुण्ड या यज्ञशाला से बाहर चली जावे।

भक्त—तो क्या पुरुष के लिये भी कोई ऐसा अवसर है जब कि वह हवन न करे।

महात्मा—स्पष्टतया तो कोई ऐसा बन्धन नहीं मालूम होता। हां, बिस्तर पर बीमार पड़ा है, उठ नहीं सकता, या डाक्टरों ने मना किया है, सख़्त जुकाम व खांसी की हालत है, रोग की अवस्था या कोई आपत्काल हो या कोई कर्त्तव्य (ड्यूटी) जैसे रणभूमि में या रेलवे में ट्रेन क्लर्कों (Train clerks), गार्डों (Guards) आदि ज़रूरी हो जो ठीक उस समय उसे रोकती हो तब उस के स्थान पर उस की स्त्री वैसा करे जैसा कि पुरुष ने उसकी लाचारी में किया।

ऐसे सब बन्धनों में गुरु शिष्य के लिये, शिष्य गुरु के लिये कर सकता है। मनुष्य की भावना शुद्ध हो, यज्ञ के स्वरूप को

जानता हो तो वह बैठे हुए जहां भी हो, मानसिक संकल्प से मन में आहुति दे सकता है। बाह्यदर्शी लोग तो केवल वायु की शुद्धि के लिये हवन करते हैं और अन्तर्दर्शी लोग अन्तः करण की शुद्धि के लिये हवन करते हैं।

अपने हाथ से आहुति दोः—

भक्त—क्या यह आवश्यक है कि अपने ही हाथ से हवन किया जाय? जब बहुत से लोग एकत्रित होते हैं और दो चार आदमी हवन करते हैं और शेष केवल मन्त्र बोलते हैं क्या वह हवन नहीं हो जाता; या मनुष्य चन्दा दे देता है, हवन पर नहीं पहुंच सकता?

महात्मा—अपने मन की सन्तुष्टि के लिये तो जैसा मनुष्य समझ ले, समझ ले। जैसे खाना और पाख़ाना मनुष्य स्वयं करता है तो उसे बल और लाभ हो सकता है। दूसरे के खाने से उसे शक्ति नहीं मिलेगी और न दूसरे के शौच जाने से ही उसे लाभ है। ग्रहण और त्याग प्रत्येक मनुष्य के लिये ज़रूरी है। जो इन्द्रियां परमात्मा ने एक एक बनाई हैं उन का ग्रहण और त्याग स्वयं ही करने से संतोष होता है। हां, आंखों से आपने न देखा, कह दिया किसी को, जा भाई देख आ। सन्तोष हो गया। कानों से स्वयं न सुना। पुत्र को कह दिया, तू ही सुन ले, मुझे बता देना। यह भी हो सकता है। हाथों से आपने न लिखा, दूसरे से लिखवा दिया। दूसरे से रोटी बनवा ली। कहीं जाना हुआ तो दूसरे को भेजकर काम करा लिया। परन्तु यह यज्ञ का काम तो ज्ञान और त्याग का है। स्वयं करना चाहिये।

यजुर्वेद के अध्याय २३, मन्त्र १५ में आता है—

ओं स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व । महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।

अर्थात् हे ज्ञान चाहने वाले जन ! तू स्वयं अपने शरीर को समर्थ कर (मनुष्य स्वयं व्यायाम करेगा तब ही शरीर से बलवान् होगा । अगर दूसरे से व्यायाम करावे, अखाड़े बनवा देवे, उन्हें पौष्टिक आहार खिला देवे तो इस से तो बल उसे नहीं मिलेगा, जब तक स्वयं व्यायाम न करे ।) स्वयं अच्छे विद्वानों से मिल, सत्संगति कर, यज्ञ कर, दान कर, उन की स्वयं सेवा कर जिस से तेरी बुजुर्गी, बड़ाई, महिमा या बड़प्पन, तेरा प्रताप और के साथ नष्ट न हो ।

यज्ञ से वाणी, चित्त और मन की शुद्धिः—

देखो भक्त जी ! यज्ञ में तीन वस्तुएं काष्ठ, घी और सामग्री जलाई जाती हैं । जहां बाहर की जलवायु और पृथिवी की शुद्धि होती है वहां वाणी, चित्त और मन की भी शुद्धि का उद्देश्य है । जो केवल वाणी मात्र से यज्ञ करते हैं उन्हें काष्ठ के समान समझो । जैसे काष्ठ अग्नि का संग करती है, उससे प्रकाश होता है परन्तु सुगन्धि नहीं होती बल्कि धुंआ भी होता है । ऐसे जो लोग केवल वैखरी वाणी से यज्ञ करते हैं उन की वाणी तो पवित्र हो जाती होगी पर जीवन सुगन्धित नहीं होता । वाणी में अहंकार का दोष (धुआं) रहता है और जो चित्त शुद्धि की भावना से यज्ञ करते हैं मानो उन का घी जलता है । घी विष का नाश करता है और स्निग्धता लाता है, अमृत वर्षा का हेतु है ।

और जो मन के ईश बनने के लिये यज्ञ करते हैं उनकी मानो

सामग्री भी साथ जलती है। पूरी भावना से यज्ञ करने वाला मनुष्य मन का स्वामी, शुद्ध चित्त और वाणी के प्रकाश वाला होता है।

नित्यकर्म तो अवश्य अपने हाथ से करने चाहियें। हां, बड़े बड़े यज्ञ जो ऋत्विजों की सहायता के बिना नहीं हो सकते, वहां निःसन्देह उनके द्वारा आहुति दिलाई जा सकती है परन्तु प्रधान अङ्ग तो यजमान को अपने हाथ से करना चाहिये, यदि शेष न कर सके।

यज्ञ की जो आत्मा है वह "स्वाहा" शब्द है और इस यज्ञ का जो शरीर है वह 'उद्' शब्द है जो उद्बुध्यस्वाग्ने...मन्त्र में आया है। इन दो वस्तुओं को दिमाग़ में बिठाने की बड़ी ज़रूरत है। "उद्" श्रद्धा और पुरुषार्थ को कहते हैं। "श्रद्धया अग्निः समिध्यते, श्रद्धया हूयते हविः" वेद (ऋ० १०.१५१.१) कहता है श्रद्धा से अग्नि प्रकाशित करो, श्रद्धा से हवि की आहुति दो। तात्पर्य यह है कि श्रद्धा हीसामग्री है, श्रद्धा ही तन है, श्रद्धा ही मन है, श्रद्धा ही धन है।

उद् के अर्थ बड़े व्यापक हैं। जब मनुष्य प्रकाश मांगता है तो उसे उद् का अर्थ यह समझना चाहिये कि वह अपनी श्रद्धा से आत्माग्नि को जगाये। प्रकाश का सम्बन्ध आत्मा से है। जैसे सूर्य का प्रकाश बाहर विद्यमान है मैंने आंख बद कर ली, अब प्रकाश मुझे नहीं मिलता, किन्तु एक मनुष्य मरा पड़ा है, आंख उसकी खुली है, सूर्य भी निकला हुवा है, वह नहीं देख सकता। तो मालूम होता है कि प्रकाश को देखने वाली आंख नहीं बल्कि आत्मा है। इसलिये प्रकाश की पहली आहुति का सम्बन्ध आत्माग्नि से है।

शव की खुली आंख बड़ी भयानक और डरावनी मालूम होती है, स्वयं आप के प्रिय पुत्र कलत्र भी डर जाते हैं; इसलिये कि उसमें आत्मा नहीं रही। इसलिये जिस मनुष्य में आत्माग्नि नहीं जगी वह संसार में भयानक ही है।

सामग्री, घृत और काष्ठ के अतिरिक्त आहुतिः—

भक्त—यज्ञ में सामग्री के अतिरिक्त फल आदि की आहुति भी देनी चाहिये या नहीं ?

महात्मा—नित्य कर्म में तो नहीं देनी चाहिये किन्तु बड़े बड़े यज्ञों में ऋतु का ध्यान रखकर देते हैं—उदाहरणार्थ—चावलों की खीर—३२ माशा, खील मुट्ठी भर, अन्न एक ग्रास के बराबर, शाक आधे ग्रास के बराबर, मूल का तीसरा और कंद का आठवां भाग, ईख एक पोरी, लता दो उंगल, चावलों की अंजलि, तिल और सत्तू मृगी मुद्रा के बराबर (मध्यमा, तर्जनी और अंगुष्ठ को मिलाकर किसी वस्तु को उठाने का नाम मृगी मुद्रा है)। पुष्प और फल की जहां जैसी आहुति लिखी हो वैसा करना चाहिये। चंद्र, श्री खण्ड, कस्तूरी, कूकम, अगरु, क्रोम चने के बराबर, गुगुल बेर के बराबर, दही ३२ माशा, गुड़ और शक्कर ३२ माशा, पत्ता फूल एक एक, वजूरे के चार टुकड़े, कटहर के १० टुकड़े, नारियल के आठ टुकड़े, केले की गांठ के ४, बेल के ३ और किस्थ के २ टुकड़े करने चाहियें।

धान्य, मूंग, उड़द, जौ मुट्ठी भर, चावल टूटे हुवे न हों, हव्य द्रव्य का हाथ से हवन करना चाहिये और कठिन द्रव्य ग्रास बराबर, ऐसा "सिद्धान्त शेखर" में लिखा है, मैंने ऋषि कुल में देखा था, अधिक ज्ञान नहीं है।

भक्त—लिखा हुवा तो ऐसा है कि चार प्रकार के पदार्थ सामग्री हवि में डाले जायँ, अन्न, मिष्टान्न, पुष्टि कारक, रोग नाशक। किन्तु कैसे पता लगे? जितनी दवाईयां पंसारियों के पास हैं वे सब रोग नाशक हैं। क्या सब डाल दी जावें?

महात्मा—ऋतु के विचार से या रोग की दृष्टि से जो उचित हों, डालनी चाहियें। "हविष्" शब्द बड़ा पूर्ण है "ह" अर्थात् दूर करने वाला "विष" ज़हर, जो ज़हर को दूर करने वाला पदार्थ है वह "हविष्" है। भौतिक अग्नि में रोगविनाशक औषधियां हवि हैं। आध्यात्मिक अग्नि में क्रमशः इन्द्रियां, मन, आत्मा हवि हैं। जो मल, विक्षेप, आवरण आदि विषों को दूर करते हैं।

इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि जो वस्तु एक व्यक्ति को खाने में देने से उस का रोग दूर हो जाता है और उसके जलाने में उसकी तथा दूसरों की हानि होती है उसको नहीं डालना चाहिये, उदाहरणार्थ—काली और लाल मिर्च, नमक, सोंठ; जिन्हें मसाले के तौर पर प्रयोग करने से पेट के रोग दूर किये जाते हैं; ऐसे पदार्थ सामग्री या हवि नहीं कहलाते।

यज्ञ रक्षा के लिये होता है और रक्षा वह होती है जिस से अन्दर और बाहर की रक्षा हो। व्यक्ति (व्यष्टि) अन्दर और समष्टि बाहर का समझो। "र" आन्तरिक बल देना, पुष्टि करना, प्रकाश, दान। "क्ष" बाहर की आपत्तियों को रोकना, क्षय करना।

यज्ञ करने वाले मनुष्य को सब देवता अपनी आशीर्वाद में अपनी अपनी भेंट देते हैं। यजुर्वेद अध्याय २ मं० ६ में लिखा है—

ओ३म् घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय ँ

सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय ॅ सद आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय ॅ सद आसीद। प्रियेण धाम्ना प्रिय ॅ सद आसीद ध्रुवाअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ ६ ॥

यज्ञ करने वाले की दो बाहु से (श्रद्धा त्याग से) दी हुई आहुति जब वसु, रुद्र आदित्य आठ वसु में फैल जाती है तो उसे इस यज्ञ से क्या क्या प्रिय सुख मिलता है:—

आठ वसुः—

अग्नि—उसे उस के नाम की प्रसिद्धि देती है।

पृथ्वी—उसे सुख से तृप्त करने वाला शोभायमान स्थान देती है।

वायु—उसे उत्तम सुख की सिद्धि देता है।

अन्तरिक्ष—उसे सब के समीप प्रीति देता है।

सूर्य—उसे हित क्रिया, पुरुषार्थ का जीवन, उत्साह, दुःखों का नाश करनेवाला आरोग्य पूर्वक सुख दायक ओषधि देता है।

प्रकाश—उसे स्थिर सुख, आयु के निमित्त की देने वाली विद्या देता है।

चन्द्रमा—उसे आनन्द कराने वाला जीवन देता है।

तारागण—उसे ज्ञान विज्ञान रीति देता है।

इसी अध्याय के आठवें मंत्र में आता है:—

ओ३म् अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्य ॅ संभ्रियासमंघ्रणा

विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात् ॥ २ । ८ ॥

यज्ञ से धारणा बुद्धि बनती है। जैसे यज्ञ से कार्बन डाइ आक्साइड (कार्बन दूयम्लजिद) उत्पन्न होती है जो पृथ्वीमें समाविष्ट हो जाती है और सूर्यकी किरण पड़ने से फिर वह गैस बाहर नहीं निकलती है और वनस्पतियों को ख़ूब पैदा करती है। ऐसे ही यज्ञ से जो बुद्धि उत्पन्न होती है और जो गुण यज्ञ का अग्नि होत्री को मिलता है वह फिर नष्ट नहीं होता, निश्चल सुख देने वाला गुण हो जाता है, अस्थिर नहीं।

सेठ०—महात्मन्! मेरा विचार है कि मुझे सौभाग्य प्राप्त हो तो अच्छा है कि मैं अपने गृह पर ब्रह्म पारायण महायज्ञ वेदों द्वारा करवाऊँ। आप कोई समय इसके सम्बन्ध में निश्चित बतलाईये और उसके लिये प्रारम्भिक निर्देशों से मुझे कृतार्थ कीजिये, यज्ञ प्रारम्भ होने से पहले जिन को मैं आचरण में ला सकूँ या जो प्रबन्ध पहले इस विषय में करना आवश्यक हो, वह बतलाइये ताकि मैं वैसा कर सकूँ।

महात्मा—बड़ी ख़ुशी की बात है किन्तु इसके लिये पर्याप्त समय लगेगा और नियम भी कुछ और कड़े रूप में पालन करने होंगे। कभी अवकाश के समय ब्योरे बार (विस्तृत क्रम पूर्वक) नियम और निर्देश आप को बताऊँगा।

पहला भाग समाप्त हुआ

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

विशेष वक्तव्य

एक सज्जनः—महाराज ! दैनिक हवन किस प्रकार करना चाहिए ? कृपा कर के समझा दें।

महात्माः—निम्न लिखित पद्धति से दैनिक हवन करना चाहिए।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ।

***ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥ यजु० अध्या ३०। मंत्र ३॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार**

---

*हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता ! समग्र ऐश्वर्ययुक्त ! शुद्ध स्वरूप ! सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये। जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको प्राप्त कीजिये ॥१॥

जो स्वप्रकाश स्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य्य चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतन स्वरूप था, जो सब

पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ यजु० अ० १३ मंत्र ४॥ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ यजु० अ० २५ । मंत्र १३ ॥ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ यजुः० अ० २३ । मंत्र ३॥

जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्त्तमान था, जो इस भूमि और सूर्य्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुख स्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें ॥२॥

जो आत्म-ज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा जिस की सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिस का प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिस का न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुख स्वरूप सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तः करण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥ ३ ॥

जो प्राणवाले और अप्राणि रूप जगत् का अपनी अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम उस सुख स्व-

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढः येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥५॥ यजुः अ० ३२। मन्त्र ६॥ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥६॥ ऋ० म० १०। सू० १२१। मंत्र १०॥ स नो बन्धुर्जनिता सविधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशाना-

---

रूप सकलैश्वर्य्य के देनेहारे परमात्मा के लिये अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें॥ ४॥

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव सूर्य्य आदि और भूमि का धारण, जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण, जिस ईश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता हैं, हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें॥ ५॥

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा! आप से भिन्न दूसरा कोई उन इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को नहीं तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और वाञ्छा करें उस उस की कामना हमारी सिद्ध होवे जिस से हम लोग धन ऐश्वर्य्यों के स्वामी होवें॥ ६॥

हे मनुष्यो! वह परमात्मा अपने लोगों को भ्राता के समान

स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥ यजु० अ० ३२। मंत्र १० ॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥ यजु० अ० ४०। मंत्र १६॥

इन मंत्रों को उच्चारण करके पृष्ठपर लिखी हुई जैसी प्रार्थना करें।

प्रार्थना मन्त्र तथा प्रार्थना परिवार में तथा समाज में बैठे हुवे एक आदमी को उच्च स्वर से पढ़ने चाहियें। बाकी सज्जनों को ध्यान पूर्वक सुनना चाहिए।

सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, वह सब कामों को पूर्ण करनेहारा सम्पूर्ण लोकमात्र और नाम, स्थान और जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त मोक्ष स्वरूप धारण करनेहारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु आचार्य राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिलकर सदा उसकी भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

हे स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिस से सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्म युक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण ज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त करायें और हम से कुटिलतायुक्त पाप रूप कर्म को दूर कीजिये इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

नीचे स्वस्ति वाचन और शान्ति प्रकरण के मंत्र भी दिये जाते हैं। इन्हें नित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि पढ़े जावें तोभी कोई हानि नहीं। जब विशेष हवन करना हो तो सब को उच्च स्वर से पढ़ने चाहियें।

अथ स्वस्तिवाचनम्।

—:o:—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥१॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥ ऋ० मं० १ सू० १। मंत्र १। ९॥ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः, स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥ स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्राः पात्वंहसाः ॥५॥ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥७॥ ऋ० मं० ५। सू० ५१ मं० ११-१५॥ ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां

मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभि सदा नः ॥८॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १५ ॥ येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥९॥ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥ सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरि ह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् । तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥११॥ को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन । को वोऽध्वरं तुविजातो अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥ येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ १३ ॥ य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥ भरेष्विन्द्रंसुहवं हवामहे ऽहोमुचँ सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवींनावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये

॥ १६ ॥ विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥ अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥ अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥ यं देवासो ऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्रसानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥ स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥ स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमासो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥ २२ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ६३ ॥ मं० ३–१६ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥ यजु० अ० १ । मंत्र १ ।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥ २४॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना ँ रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवाना ँ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥२५॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ २६॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ २७॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ २८॥ यजुः अ० २५। मन्त्र १४। १५। १८। १९। २१॥

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥ २९॥ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः देवेभिर्मानुषेजने॥३०॥ साम० पर्वार्चिके प्रपा० १। मन्त्र १। २॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ ३१॥ अ० कां० १। अनु० १। सू० १। मन्त्र १॥ इति स्वस्तिवाचनम्

अथ शान्तिप्रकरणम्

—:०:—

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥ शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥ शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरुची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥ शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥ ४ ॥ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥ शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु

शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ६ ॥ शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥ १० ॥ श नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥ शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥ ऋ० मं० ७ सू० ३५। मं० १–१३।

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥ शं नो वातः पवताᳲ शं नस्तपतु सूर्य्यः। शं न कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ १५ ॥ अहानि शं भवन्तु नः शᳲ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ १६ ॥ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।

शंय्योरभि स्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः । पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥ यजु० अ० ३६ । मन्त्र ८।१०।११।१२।१७।२४॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२०॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २२ ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि-गृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २३ ॥ यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिंश्चित्तꣳ सर्व-मोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २४ ॥ सुषा-रथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते ऽभीशुभिर्वाजिन इव ।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥ यजु० अ० ३४ । मन्त्र १-६ ॥

१ २ ३ २उ १ २र १ १ २र १ २ ३ १ २
स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते ! शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥ साम० उत्तरार्चिके० प्रपा० १ । मन्त्र ३ ॥ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० १५ । मन्त्र ५, ६ ॥

इति शान्ति प्रकरणम् ।

—:o:—

अथ आचमनमन्त्राः ॥

(१) ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

(२) ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

(३) ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।

तीन आचमन करें । (विधि यज्ञरहस्य सातवीं झांकी में देखें)

अथ इन्द्रियस्पर्शमन्त्राः ॥

ओं वाङ्मऽआस्येस्तु । इस मन्त्र से मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु । इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्रों,

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । इस मन्त्र से दोनों आंखें,

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु । इस मन्त्र से दोनों बाहु,

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु । इस मन्त्र से दोनों जंघाओं और,

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ पारस्कर गृ० कण्डिका ३ । सू० २५ ॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना; ('मे' शब्द पर ज़ोर दें विधि यज्ञरहस्य ग्यारहवीं झांकी में देखें) समिधा चयनवेदी में करें पुनः—

ओं भूर्भुवः स्वः । गोभिल गृ० प्र० १ । खं० १ । सू० ११ ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उस से कपूर लगा किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी छोटी समिधा लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा; यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे; वह मन्त्र यह है:—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥ यजु० अ० ३ । मं० ५ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयंच । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत । यजु० अ० १५ । मन्त्र ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओंमें प्रविष्ट होनेलगे तब चन्दन की अथवा पलाश आदि की तीन लकड़ी आठ आठ अंगुल की घृत में डुबो उन में से नीचे लिखे एक एक मन्त्र से एक एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे; वे मन्त्र ये हैं—

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने ध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय । चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥१॥ (इस मन्त्र से आत्मोन्नति की भावना करता हुआ पहिली समिधा चढ़ावे)।

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ॥२॥ इससे और **ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम ॥३॥**

इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से (मन की उन्नति के लिये भावना करता हुआ) दूसरी समिधा चढ़ावे ।

ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा । इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम॥

यह तीनों मन्त्र यजु० अ० ३ मं० १-२-३ के हैं ।

इस मन्त्र से (शरीर की उन्नति के लिये भावना करता हुआ)

तीसरी समिधा की आहुति देवे।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो सुवर्ण, चाँदी, काँसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ-पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें, पश्चात् घृत आदि जो कि उष्ण कर छान *सुगन्धादि पदार्थ मिला पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो) में से न्यून से न्यून ६ माशे भर, अधिक से अधिक छटाँक भर की आहुति देवें, यही आहुति का परमाण है, उस घृत में से चमसा, जिस में ६ माशे ही घृत आवे ऐसा बनवाया हो, भर के नीचे लिखे मन्त्रों से पाँच आहुति देवें। [क्रमशः (१) इद्ध (२) प्रजया, (३) पशुभिः, (४) ब्रह्म वर्चस और (५) अन्नाद्य शब्दों पर ज़ोर दे वैसी भावना बनावें (देखें यज्ञ रहस्य झांकी १७)

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध[1] वर्द्धय चास्मान् प्रजया[2] पशुभिर्[3]ब्रह्मवर्चसेना[4]न्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम।

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल ले के वेदी के पूर्व की दिशा आदि चारों ओर छिड़कावें, उस के ये मन्त्र हैं—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥ इस मन्त्र से पूर्व,†

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इस से पश्चिम,†

---

* एक सेर घृत में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर डालना चाहिये।

† पानी छोड़ते समय यह भावना करते हुए (क्रिया रूप से) कि Negative (तम) से Positive (प्रकाश) की ओर जाना है। दक्षिण से उत्तर में और पश्चिम से पूर्व में जल लम्बा हाथ करके छोड़ें। इसी तरह आघारावाज्य आहुति देते हुए भी क्रिया और भावना करनी चाहिये।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इस से उत्तर *और

गोभिल गृ० । प्र० खं० ३ । सू० १—३॥

ओ३म् देव सवितः ! प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ गोभिल: गृ० । प्र० खं ३ । सू० १—३ ॥

इस मन्त्र से वेदी (की दक्षिण दिशा से आरम्भ करके पूर्व उत्तर आदि) के चारों ओर जल छिड़कावें (देखें झांकी १७)। इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें। इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है, उन में से यज्ञ-कुण्ड के उत्तर-भाग में जो एक आहुति और यज्ञ-कुण्ड के दक्षिण-भाग में दूसरी आहुति देनी होती है, उस को "आघारावाज्याहुति" कहते हैं। और जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियाँ दी जाती हैं, उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं, सो घृत-पात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा पकड़ के—

आघारावाज्याहुति

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से उत्तर-भाग अग्नि में*

ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में*
प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवें, तत्पश्चात्—

आज्यभागाहुति

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

---

* देखो फुटनोट पृ० २०४

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी (देखें य.र. झांकी १६)। उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात आघारावाज्य-भागाहुति दे के जब प्रधान होम अर्थात् जिस कर्म में जितना जितना होम करना हो, कर के पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावा-ज्यभागाहुति) देवें पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृत पात्रमें से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आ ति देवें।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदन्न मम॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे-इदन्न मम॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय-इदन्न मम॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्याः स्वाहा॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम॥

यह चार घी की आहुति दे कर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही है, यह घृत अथवा भात (वा किसी मीठी चीज़) की देनी चाहिये।

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यून मिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम॥

इससे एक आहुति करके प्रजापत्याहुति नीचे लिखे मन्त्र* को मनमें बोल के देनी चाहिये।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।

---

* शब्द 'प्रजापतये'

इस से मौन करके एक आहुति दे कर चार आज्याहुति घृत की देवें, परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल, समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं, वे चार मन्त्र यह है। [निम्न लिखित मन्त्र और उपरोक्त चार व्याहृतियों के मन्त्र नित्य कर्म में नहीं हैं। जब कभी बड़ा हवन करना हो तो इन से भी घी से आहुतियां दी जावें।]

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्न ! आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥ (१)

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥ (२)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्ने ! पवस्व स्वपाऽस्मे वर्चःसुवीर्य्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥ (३)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते ! न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥ (४)

(इन से घृत की चार आहुतियाँ देकर नीचे लिखे मन्त्रों से, आठ आज्याहुति सर्वत्र मंगल-कार्य्यों में या जब कभी बड़ा हवन करना हो, देवें)

ओं त्वन्नो अग्ने ! वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळो

अवयासिसीष्ठाः यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्यां-इदन्न मम ॥१॥ ओं स त्वन्नो अग्ने ऽवमो भवोती, नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्ठौ अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्नि वरुणाभ्यां-इदन्न मम ॥२॥ ओं इमं मे वरुण ! श्रुधी हवमद्याच मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥ ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा । इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥४॥ ओं ये ते शतं वरुण ! ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्य-इदन्न मम ॥५॥ ओं अयाश्चाग्ने ! ऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज ॐ स्वाहा । इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ॥६॥ ओं उदुत्तमं वरुण ! पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्यव्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणाय-ऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्नमम ॥७॥ ओं भवतन्नः

समनसौ, सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञ ँ हि ँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्यां-इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५ मं० ३ ॥

निम्नलिखित मन्त्रों से केवल प्रातःकाल हवन करे ।

प्रातःकाल हवन मन्त्राः

ओं सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥१॥

ओं सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओं ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योति स्वाहा ॥३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ॥१॥ ओं भुववार्यवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम॥२॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम ॥३॥ ओं भूर्भुवःस्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः-इदन्न मम ॥४॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥ ओं यां मेधां देवगणः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाऽग्ने ! मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥ ओं विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥

ओं अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान् । विश्वानि देव ! वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥

अब नीचे लिखे हुवे मन्त्र केवल सायंकाल के अग्नि-होत्र के जानो

सायंकाल हवन मन्त्राः—आघारावाज्याहुति

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये—इदन्नमम ॥ इस मन्त्र से उत्तर-भाग अग्नि में,*

ओं सोमाय स्वाहा । इदम् सोमाय—इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में,* प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवें तत्पश्चात् ।

आज्याभागाहुति

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥
ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी (विधि देखें यज्ञ-रहस्य झांकी १६)

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥
ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥
ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

(इस मन्त्र को मनमें उच्चारण करके§ तीसरी आहुति देनी ।)

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

---

* फुट नोट पृष्ठ २०४ पर देखें ।

§ "अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः" शब्दों का उच्चारण करें ।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ॥१॥ ओं भुववार्यवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम॥२॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम ॥३॥ ओं भूर्भुवःस्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमाग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः-इदन्न मम ॥४॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥ ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाऽग्ने ! मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥ ओं विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥ ओं अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव ! वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ८ ॥

इस के पश्चात् अपनी इच्छा के अनुसार गायत्रि मन्त्र से आहुति दें—

गायत्री मन्त्रः—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ॥

पूर्णाहुतिः—ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

इसको पढ़ कर

ओं सर्वं वै पूर्णं ॐ स्वाहा ॥

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक एक बार पढ़ के एक एक करके तीन आहुति देवें।

यदि अमावस्या व पूर्ण मासी का दिन हो तो पूर्णाहुति से पहले निम्न लिखित मंत्रों से यज्ञ शेष और घी की आहुतियां दें।

अमावस्या के दिन:—मीठे पदार्थ से

ओं अग्नये स्वाहा।

ओं इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा।

ओं विष्णवे स्वाहा।

व्याहृति की चार आहुतियां:—घृत से

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदं अग्नये इदन्न मम।

ओं भुववर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम।

ओं भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम।

पूर्णमासी के दिन:— मीठे पदार्थ से

ओं अग्नये स्वाहा।

ओं अग्निशोमाभ्यां स्वाहा।

ओं विष्णवे स्वाहा।

व्याहृति की चार आहुतियां—घृत से

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे इदन्न मम ।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय-इदन्न मम ।

ओं भूर्भुवः स्वराग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा । इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम ।

इसके पश्चात् प्रभु का धन्यवाद प्रार्थना जैसी कि यज्ञरहस्य पहली झांकी में पृष्ठ ११—१५ पर लिखी है, वैसी करें । इसके पश्चात् 'यज्ञपुरुष-महिमा" या कोई और भजन गावें

यज्ञपुरुष-महिमा

यज्ञ रूप प्रभु हमारे, भाव उज्वल कीजिए ।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए ॥
वेद की बोलें ऋचाएं, सत्य को धारण करें ।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें ॥
अश्वमेध आदिक रचाएं, यज्ञ पर उपकार को ।
धर्म मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को ॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें ।
रोग पीड़ित विश्व के, संताप सब हरते रहें ॥
कामना मिट जाए मन से, पाप अत्याचार की ।
भावनाएं पूर्ण होवें, यज्ञ से नर नार की ॥

लाभकारी हों हवन, हर जीवधारी के लिए ।
वायु जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किए ।।
स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम पथ विस्तार हो ।
"इदम् न मम" का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो ।।
हाथ जोड़ झुकाए मस्तक, वन्दना हम कर रहे ।
नाथ करुणा रूप करुणा, आप की सब पर रहे ।।

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि । यजु० अ० ३६ मं० १७ ।।

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग भवेत् ।।
सब का भला करो भगवान् , सब पर दया करो भगवान् ।
सब पर कृपा करो भगवान् ,सब का सब विधि हो कल्याण ।।

एक सज्जन—यदि किसी की इतनी सामर्थ्य न हो कि ६ माशे घृत से आहुति दे सके, जैसे हम लोग निर्धन हैं तो क्या हवन न करें ?

महात्मा—हवन तो किसी काल, हाल में त्याज्य नहीं है। काष्ठ तक से भी करने का विधान है जब कोई हव्य वस्तु विशेष न मिल सके। अतः अपनी सामर्थ्यानुसार जितने वज़नकी आहुति दे सक्ता हो, देवे। मगर चमचा उतना ही बना लेवे जो भरकर ही देवे।

इस पर एक सज्जन ने कहा कि महाराज! आपकी पद्धति तो संस्कारविधि और पंचमहायज्ञ-विधि से ज़रा भिन्न है।

महात्मा—भाई! देखो कुछ भी भिन्नता नहीं। अगर आप प्रातः भी हवन करें और सायं काल को भी, तो फिर प्रातः के ही पूरे १६ मन्त्र बोल कर आहुति दें और सायंकाल को भी पूर्ण हवन करें, जैसे समझाया गया है। एक समय में दोनों समय का हवन कर लेने का यह मतलब नहीं कि आप आहुतियां भी कम दें। महर्षि के लिखने का अनुचित लाभ न उठावें और न ही बचत ढूंढें। श्रद्धा भक्ति तो संकोच नहीं सिखाती। यज्ञ में तो प्रभु की दी हुई दात से आप आहुति देते हो, अपने घर से थोड़ा दे रहे होते हो? हां, जब अपने घर की समझ लोगे तो मुश्किल हो जायगी। मैं ने तो यही समझा हुआ है कि भक्ति और शुभ कार्य प्रभु की कृपा से होते हैं, उसीके आधीन हैं। इसलिये प्रातः और सायं समय के मन्त्र जुदा जुदा बोल कर प्रातः की आहुती के बाद सायं काल की १६ आहुतियां देनी चाहिए, यदि एक ही वक्त में सायं प्रातः दोनों काल का हवन करना हो। इस में न किसी सिद्धान्त की हानि है न महर्षि के लिखने से भिन्न है। आप लोगों ने समझा नहीं, मैं ने समझा है।

हां, "यदस्य कर्मणो" का मन्त्र नित्य कर्म में आप को अधिक दीख पड़ेगा। सो आप न चाहें तो न दें, मगर यह प्रायश्चित्त

के लिये है। मनुष्य से बहुत भूलें हो जाती हैं, इस लिये विद्वान् इसे बोला करते हैं। "पूर्णमदः" का मन्त्र भी आपको अधिक जँचेगा। यह ईशोपनिशद् का शांति मन्त्र है। स्वामीजी महाराज ने तो सब संक्षिप्त विधि इस लिये लिखी, कि थोड़े मन्त्र होने से थोड़े काल में हर कोई आसानी से कर सके। इस मन्त्र को आप न चाहो, तो न बोलो मगर बोलने में हानी कोई नहीं पहुंचती परन्तु जो रहस्य इस मन्त्र का हृदय पर प्रभाव करता है वही चीज़ ही यज्ञमय जीवन बनाने वाली है और प्रभु का विश्वासी बनाती है।

एक सज्जन—कई लोग हवनकुण्ड में यज्ञशेष से बलिवैश्वदेव यज्ञ की भी आहुतियां दे दिया करते हैं। यह कहां तक ठीक है?

महात्मा—बलिवैश्व देव यज्ञ की आहुतियां चूल्हे में भोजनशाला के अन्न को पवित्र करने के लिये प्रायश्चित्त रूप में प्रति दिवस देनी चाहिएं। यदि कोई मीठा पदार्थ बांटने के लिये बनाया हो, तो यज्ञकुण्ड में आहुति दे देते हैं ताकि वह पदार्थ यज्ञ कुण्ड में डाला हुआ यज्ञशेष बन जावे। इसी पवित्र भाव के साथ डाला जाता है। सो आपको अपने घर में इस का आचरण प्रति दिन कराना चाहिए। वह मन्त्र छोटे छोटे से हैं। देवियां झट पट स्मरण कर सकती हैं। आप सुन लीजिए। वे मन्त्र यह हैं:—

ओ३म् अग्नये स्वाहा। १॥

ओं सोमाय स्वाहा। २॥

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ३॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ४॥

ओं धन्वन्तरये स्वाहा। ५॥

ओं कुह्वै स्वाहा । ६ ॥
ओं अनुमत्यै स्वाहा । ७ ॥
ओं प्रजापतये स्वाहा । ८ ॥
ओं द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा । ९ ॥
ओं स्विष्टकृते स्वाहा । १० ॥

एक सज्जनः—यदि अकेला हवन करना हो तो घी से किन मन्त्रों से और सामग्री से किन मन्त्रों से आहुति देनी चाहिए ?

महात्माः—जिन मन्त्रों में "इदन्न मम" है वह घृत की और बाकी अर्थात् "ओ३म् सूर्यो ज्योतिः......आदि और ओं आपो ज्योति रसो......आदि" घी मिली सामग्री से देनी चाहिएं या ऐसे भी करने में कोई दोष नहीं कि एक हाथ से सब मन्त्रों से घी की और दूसरे हाथसे सामग्री की आहुति डालनी चाहिए । परमेश्वर की पूजा में शुद्ध भावना की अधिक आवश्यकता है ।

॥ इतिशम् ॥

अन्तिम प्रार्थना

हे परम श्रेयस्! तुम ही तो परम श्रेयस् हो। मुझ में जो श्रेय है वह सब आप का ही है। इसलिये तो मनुष्य जाति सब से श्रेय है, और यही ही श्रीमान् है। आप के महायज्ञ से मेरा शरीर बना है और बन रहा है। क्षण क्षण पल रहा है। आप ही सच्चे याज्ञक हो। मेरी नाड़ियों के अन्दर जो रक्त बह रहा है वह (रक्त) आप ही के यज्ञ का फल है। मेरी हड्डियां, मेरा मांस, मेरी त्वचा, बाल, खाल, सब चर्बी और मज्जा, मेधा, वीर्य और रस तेरे ही यज्ञ से बने हैं। तेरे अमृत यज्ञ के प्रसाद, यज्ञ के शेष से जुड़ रहे हैं। फिर नाथ! यदि मेरा यह शरीर यज्ञ के लिये न बना तो राक्षस कहलायेगा।

मेरा जीवन, मेरा विचार यज्ञ रूप हो। प्रभो! मेरा आहार, मेरा विचार और आचार स्वयं यज्ञ बन जायँ, जब शरीर में बिन्दु बिन्दु तेरे यज्ञ के भाग की है, यज्ञ के शेष की है। भगवन्! मेरी इन्द्रियों पर आप का ही अधिकार हो। मेरे प्राण और प्राण-बल आपके वश में हों। मेरा श्वास श्वास तेरे नाम की माला बन जाय। मेरा अङ्ग अङ्ग तेरी ज्योति का झरोका बन जावे और मैं, मेरी आत्मा यज्ञ स्वरूप हो और मेरी "मैं" का बाकी जो कुछ भी है, शरीर और शरीर के सम्पूर्ण कार्य जो स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर से हों वह संसार के हृदयों के लिये यज्ञशेष बनकर व्यय हों। हे भगवन्! मैं बड़ा ही सौभाग्य शाली होऊँगा, यदि मेरी इस प्रातः की प्रार्थना को स्वीकार कर लो और मुझे ऐसा बना दो। मैं स्वयं ऐसा नहीं बन सकता, जैसा मेरा यह विचार है। यदि यह विचार तेरी कृपा, तेरी अमृत वर्षा से भीग जाय तो संसार को सींच सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये प्रभो! मेरी सफलता पूर्णतया आप के आधीन है। मैं तेरे ही आधीन, तेरा आश्रित, 'प्रभु आश्रित' हूं। अब अपने आश्रित को अपने नाम के नाते, आप नाम की लाज पालने के लिये उभारो, निहारो। स्वामी हो! स्वामी हो!! स्वामी हो!!!

टेकचंद, प्रभु-आश्रित

यज्ञरहस्य-प्रथम भाग

परिशिष्ट नं० १

साधारणतया जिन वृक्षों की लकड़ियां समिधा के तौर पर बरती जाती हैं, उनके गुण संक्षिप्त से नीचे लिखे जाते हैं:—

आम—जड़ व छाल अतिसार (दस्त), सफ़रा, बलग़म, जरियान और गुप्तइन्द्रिय की रतूबत को दूर करती है। पत्ते मसोढ़ों और दांत के दर्द, बद-हज़मी, दस्त व मरोड़ और आंख के रोगों में लाभकारी हैं। पीले रंग के पत्ते रक्त को साफ़ करते हैं। फूल सर्द, ख़ुश्क और काबिज़ होता है। ख़ून के दस्तों में बड़ा गुण करता है। आम के फल के गुण कौन नहीं जानता? ख़ून को बढ़ाता है, वीर्य को गाढ़ा करता है, बल व रुचि बढ़ाता है और रंग निखारता है। इस की गुठली भी दस्तों के रोगियों को देते हैं।

बड़—बड़ का दूध जड़ और बीज सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति देते हैं। छाल कफ़, पित्त, ज़ख़म, जलन, विसर्प रोग और योनि रोग के लिये लाभकारी है। पत्ते योनि रोग व मूत्र रोग में गुण करते हैं। दूध जरियान, एहतलाम, फोड़ा, फुंसी, आंख व मूत्र रोग में विशेषतया लाभकारी है। कोंपल गर्भवती को खिलाने से नर सन्तान होने की सम्भावना होती है। बीज

बलग़म, सफ़रा और स्त्रियों और पुरुषों के गुप्त रोगों को दूर करते हैं। शक्तिप्रद, वीर्य स्तम्भक व प्रमेह नाशक हैं। बड़ की जटा (दाढ़ी) भी उपर्युक्त रोगों में बरती जाती हैं।

बिल—जड़ व छाल और पत्तों का रस मधुमेह व मूत्रके अधिक और वार वार आने को दूर करने में अद्वितीय है। फल दस्तों, मरोड़ों, पेचिशऔर संग्रहणी के रोगोंमें अति गुणकारी हैं। बिल की जड़ की छाल वैद्यक के प्रसिद्ध योग (नुसख़ा) दशमूल का एक भाग है जो कि बहुत रोगों में बरता जाता है। सेना या जन समूह के विषले अन्न को खा जानेसे जो पेचिश की बिमारी फल जाती है, उस के दूर करने के लिये अति लाभकारी है। पेचिश और अतिसार से पैदा हुई हुई निर्बलता को दूरकरके फिर से रण भूमि के योग्य बनाता है। अब तो डाक्टर लोग भी इस का प्रयोग बिना किसी बाधा के अधिक करते हैं।

पलाश (ढाक-छिछड़ा)—बीज गर्म होते हैं। पाचन शक्ति को बलवान् करते हैं, मबही हैं, कब्जकुशा हैं और टूटी हड्डीको जोड़तेहैं। बवासीर, संग्रहणी, बाओगोला और ज़ख़मों को दूर करते हैं। कृमियों को मारते हैं। इस के फूल पियास, जलन, वात, रक्त, कोढ़, जरियान, बवासीर और शूल नाशक हैं। कई प्रकार के दर्दों में लाभदायक हैं। पलाश में यह एक विशेष गुण है कि वह रोगप्रसारकवायुओं के प्रभाव को दूर कर के तबियत को ठीक करता है। कृमियों को नष्ट करता है। जहां यह वृक्ष होता है, वहां रोग प्रसारक वायु कोई प्रभाव नहीं डालते। इसका नाम ब्रह्मवृक्ष भी है। यज्ञके लिये प्रशंसनीय है।

प्राचीन काल में योद्धाओं की टूटी हड्डियों के जोड़ने के काम में आता था।

पीपल—पीपल का दातन करना और पत्ते को वार वार पानी में घोल कर पीना वारी के बुख़ार को दूर करता है। पत्तों का रस सांप के काटे को लाभदायक है।

बीज जरियान, एहतलाम, बवासीर, योनि-दोष, कफ़, घावों और ख़ून की ख़राबी को दूर करते हैं। मुख की रंगत को निखारते हैं। तपदिक के रोगियों को इस की छाया में बैठना अति लाभदायक है। सन्तान के उत्सुकों को इसके बीज दूध का सेवन करना चाहिए।

बड़ व पीपल के बहुत से गुण एक से हैं इस लिये इन्हें दोबारा नहीं लिखा जाता।

जंडी (शमी)—पत्ते ज़ख़मों, कफ़, खांसी, श्वास, कुष्ठ, बवासीर, कब्ज़ और कृमिनाशक हैं। सीतला (चेचक) आदि को दूर करते हैं। दुशमन राजा या किसी और कारण से फैलाई हुई विषैली और ख़राब गैस के प्रभाव को दूर करने के लिये इसका धूआं लाभ दायक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस की राख को विषैले पानी के तालाब को शुद्ध करने के लिये प्रयोग किया जाता था, इस लिये इस का नाम 'शमी' है।

संक्रामक रोगों से बचाने वाली है। मंगल देने वाली है अर्थात् संघ व भीड़में छूत-छात की उपाधियों से रक्षा करती है।

इस का नाम 'लक्ष्मी' भी है। मुख शरीर तथा त्वचा की कुरूपता को दूर करके सुन्दर और कान्तिमान् बनाती है।

परिशिष्ट नं० २

ऋत्वनुकूल हवन सामग्री

बसन्त--१ छलीरा, २ तालीस पत्र, ३ पत्रज, ४ दाख ५ लज्जावती, ६ शीतल चीनी, ७ कपूर, ८ चीड़, ९ देवदारु, १० गिलोय, ११ अगर, १२ तगर, १३ केसर, १४ इन्द्रजों, १५ गुग्गुल, १६ कस्तूरी, १७ तीनों चन्दन, १८ जावित्री, १९ जायफल, २० सरस धूप, २१ पुष्कर मूल, २२ कमलगट्टा, २३ मजीठ, २४ बनकचूर, २५ दालचीनी, २६ गूलरकी छाल २७ तेजफल, २८ शङ्खपुष्पी, २९ चिरायता, ३० खस, ३१ गोखरू, ३२ खाण्ड, ३३ गोघृत, ३४ ऋतुफल, ३५ भात या मोहनभोग, ३६ जंड समिधा ३७ मुश्क बाला [चैत्र वैशाख]

ग्रीष्म—मुरा, बायबिडंग, कपूर, चिरोंजी, नागरमोथा पीलाचन्दन, छलीरा, निर्मली, सतावर, खस, गिलोय; धूप, दालचीनी; लवंग, कस्तूरी, चन्दन, तगर, भोजपत्र, भात, कुशा की जड़, तालीस पत्र, पद्माख, दारूहल्दी, लालचन्दन, मजीठ, शिलारस, केसर, जटामासी, नेत्रबाला, इलायची बड़ी, उन्नाव. आमले, मूंग के लड्डू, ऋतुफल, चन्दन चूर, [ज्येष्ठ आषाढ़]।

वर्षा—काला अगर, पीली अगर, जौं, चीड़, धूप सरस तगर, देवदारू, गुग्गुल, नकछिकनी, राल, जायफल, मुंडी, गोला, निर्मली, कस्तूरी, मखानें, तेजपत्र, कपूर, बनकचूर, बेल, जटामांसी, छोटी इलायची, बच, गिलोय, तुलसी के बीज, बायबिडंग, कमल डण्डी, शहद, चन्दन श्वेत का चूरा, ऋतुफल

नागकेसर, ब्राह्मी, चिरायता, उड़द के लड्डू, छुहारे, सङ्खाहुली, मोचरस, विष्णुक्रांता, ढाक की समिधा, गोघृत, खाण्ड, भात। [श्रावण, भाद्रपद]

शरद—चन्दन सफ़ैद, चन्दन लाल, चन्दन पीला, गुग्गुल, नागकेसर, इलायची बड़ी, गिलोय, चिरौंजी, विदारीकन्द, गूलर की छाल, ब्राह्मी, दालचीनी, कपूर, कचरी, मोचरस, पित्तपापड़ा, अगर, भारङ्गी, इन्द्र जौ, रेणुका, मुनक्का, असगन्ध, सीतलचीनी, जायफल, पत्रज. चिरायता, केसर, कस्तूरी, किशमिश, खाण्ड, जटामांसी, तालमखाना, सहदेवी, ढाक की समिधा, धान की खीर, विष्णुक्रान्ता, कपूर, गोघृत, ऋतुफल। [आश्विन, कार्तिक]

हेमन्त—कुठ, मूसली, गन्ध कोकिला, घुड़वाच्छ, पितपापड़ा, कपूर, कचरी. नकछिकनी, गिलोय, पटोलपत्र, दालचीनी, भारङ्गी, सौंफ़, मुनक्का, कस्तूरी, चीड़, गुग्गुल, अख़रोट, रास्ना, शहद, पुष्करमूल, केसर, छुहारे, गाखरू, कांच के बीज, कांटेदार गिलोय, पर्पटी, बादाम, मुलहटी काले तिल, जावित्री, लाल चन्दन, मुश्क बाला, तालीसपत्र, रेणुका, खोया, बिना नमक की खिचड़ी, आम या खैर की समिधा, गोघृत, देवदारु ॥ [मार्गशीर्ष, पौष]

शिशिर—अख़रोट, कचूर; बायबिडंग, राल, मुण्डी मोचरस, गिलोय; मुनक्का, रेणुका, काले तिल, कस्तूरी, तज, केसर, चन्दन, चिरायता, छुहारे;, तुलसी के बीज, गुग्गुल, चिरौंजी, काकड़ासींगी, खाण्ड, सतावर, दारूहल्दी, शङ्खपुष्पी, पद्माख, कौञ्च के बीज, जटामांसी, भोज पत्र, गूलर, बड़ समिधा, मोहन भोग (कड़ाह), गोघृत [माघ, फाल्गुन]

सामग्री का एक ख़ास नुसख़ा

	सेर छ०		सेर छ०
अगर	१-४	हौ बेर	१-०
तगर	१-०	मेहदी	०-८
बाल छड़	२-८	चिरायता	०-१०
छलीरा	५-०	मुलहटी	१-०
कपूर कचरी	१-४	खूबकलां	०-४
मुश्क बाला	०-४	मुनक्का	०-८
नागर मोथा	१-४	सरसों सफ़ेद	०-१
कपूर	१-४	हर्मल	०-१
गुलाब	१-४	त्रयपत्री	०-४
बुनफ़शा	२-४	ब्राह्मी	२-०
नीलोफ़र	२-८	इन्द्रायण की जड़	०-४
उनाव	१-०	असगंध	१-०
लसूड़े	१-०	मकोय	१-०
हरड़	१-०	बांसा	१-०
बहेड़ा	१-०	बादाम	२-०
आंवला	१-०	गरी	३-०
शतावर	०-८	जायफल	०-१२
काकड़ सिंगी	०-४	लौंग	०-१२
शंख पुष्पी	०-४	गोखरू	१-०
इटसिट	१-०	पिस्ता	०-४
हल्दी	१-०	चीड़ का बुरादा	०-४
नीम के पत्ते	०-८	गिलोय	५-०
नीम की निमोली	०-४	गुग्गुल	५-०
		बूरा चन्दन सफ़ेद	२-८

	सेर छ०		सेर छ०
लाल चन्दन	३–०	शक्कर देसी	५–०
तज	२–०	वायबडिंग	१–४
वर्च	२–०	दालचीनी	१–०
धूप लकड़ी	३–०	धूप काला	२–८
इन्द्र जौ	१–०	राल	१–४
छुहारे	२–८	पित पापड़ा	०–८
इलाची बड़ी	१–४	सर काना जड़ के साथ	२–०
इलायची छोटी	१–४	जवा	१–०
तालीस पत्र	१–०	पीपल की छाल	०–८
चिरौंजी	०–४	तुलसी के पत्ते	०–२
जावित्री	०–४	तुलसी के बीज	०–१
गाज़बान	०–८	कंवल डोडा	१–०
तालमखाना	१–४	आम के पत्ते	०–८
खवी	५–०	यूकलिपटिस के पत्ते	०–८
मोचरस	१–४	बड़ के बीज	०–१
चंडी के पत्ते	०–८	मुंडी बूटी	१–४
सरींह के पत्ते	०–४	बड़की जटा	०–८
दारू हल्दी	१–०	सौंफ़	०–८
किशमिश	१–०	सतबर्ग के फूल	०–४
जौ	२–०	नकछिकनी	०–५
काले तिल	५–०	कंवल पत्र	१–४
माश सालम	५–०	कचूर	२–८
		नाग केसर	१–४
मूंग हरे सालम	२–०	पनरी	१–४
चावल	२–०	शहद	२–८

परिशिष्ट नं० ३

बृहद यज्ञ के नियम

१ एक वेद का यज्ञ आरम्भ होने से तीन दिन पूर्व और चारों वेदों का यज्ञ आरम्भ होने से एक मास पूर्व यजमान और होता ऋत्विज ब्रह्मचारी रहें।

२ एक दिन पूर्व व्रत करें-दुग्ध पान कर सकते हैं और अन्तः-करण की शुद्धि के लिये गायत्री का जाप करते रहें।

३ हुक्का, सिगरिट, शराब, मांस अभक्ष पदार्थों का सेवन करने वाला न हो वा वह उनके त्याग करने का व्रत लेवे।

४ यज्ञ के दिनों में भोजन विशेष सात्विक होगा। प्याज़ लहसनादि का भी सेवन मना हैं।

५ जितने दिन यज्ञ होता रहे; यम-नियम का पालन आवश्यक है, बजाए व्यवहार के इन दिनों बाकी समय जप स्वाध्याय सत्संग में प्रवृत रहें।

६ दोनों समय यज्ञ करने के लिये स्नान करके मौन रूप में बैठना होगा।

७ यज्ञ के वस्त्र जुदा होंगे जो केवल यज्ञ के समय ही पहने जावेंगे और यज्ञ की समाप्ति पर प्रतिदिन उतार कर पृथक रख दिए जावेंगे। इन कपड़ों को पहने हुए कुछ खाना या बाहर घूमने के लिये जाना मना है। वस्त्र, चाहे खद्दर के हों (जो केशरी रंग में रंगे हुए हों), चाहे रेशमी या ऊनी, परन्तु हों स्वदेशी। पाजामा, सिलवार, पतलून और जुराब पहिनना निषिद्ध है।

८ लंगोट या कोपीन भीतर रहनी चाहिए-लघुशंकादि की आवश्यकता के समय भी यज्ञ वाले ऊपर के वस्त्र उतार

कर जाना होगा।

९ यज्ञोपवीत नया धारण करके बैठना होगा।

१० जहां जहां पर जिस जिस होता का आसन होजावे यज्ञ की समाप्ति तक स्थान न बदला जावेगा चाहे धूआं हो या आग का सेंक भी लगे। यज्ञ के समय आसन वहां ही रहेगा। जहां तक होसके यजमान्, पुरोहित और ऋत्विज् सब रात को एक जगह सोवें ताकि रात को समिलित प्रार्थना करके सो सकें और प्रातः यज्ञ कार्य ठीक समय पर आरम्भ करसकें।

११ यज्ञ के समय से एक दिन पूर्व से (उपवास के दिन से ही) चारपाई छोड़ कर भूमी पर या लकड़ी के तख्तपोश पर यज्ञ की समाप्ति के दिन तक सोना होगा।

१२. यज्ञ के समय और यज्ञमण्डप के समीप आते जाते समय जूती का प्रयोग न करना होगा। खड़ावें पहनी जावेंगी। हर एक व्यक्ति को यज्ञमण्डप के अन्दर आने से पूर्व हाथ पांव धोने होंगे, चाहे वह दर्शक क्यों न हो।

१३. कोई चमड़े वाली वस्तु जैसे घड़ीकी चेन, गेटस, बटुवा आदि सिगरेट-तम्बाकू आदि यज्ञमण्डप में अपने साथ दर्शक न लावेंगे।

१४. यज्ञ शेष भी मंडप के बाहर खाना होगा, मंडप की पवित्रता को खास तौर पर स्थापित रखा जावेगा।

१५. आहुति देने वाली स्त्रियों को लाज़मी है कि शास्त्रोक्त मर्यादा अनुसार और पूर्वजों की सभ्यता के अनुकूल सीधी मांग निकाल कर और सादा लिबास पहिन कर आवें। टेढ़े चीर आदि नहीं रखने होंगे। पश्चिमी फ़ैशन से परहेज़ करना होगा।

१६. जिन स्त्रियों को यज्ञ के दिनों में रजोदर्शन की सम्भावना हो वह यजमान न बन।

१७. कोई स्त्री रजोदर्शन के दिनों में यज्ञमंडप में न आवे।

१८. जिस देवी का बालक चालीस दिन से भीतर की आयु

का हो वह भी आहुति न दे।

१९, यज्ञमंडप का कोई पात्र खाने पीने आदि के लिये प्रयोग न किया जावे।

२०. यज्ञ की किसी वस्तु को बिना यज्ञकार्य के और किसी काम में न लाया जावे। उदाहरणार्थ इसकी अग्नि पर कोई वस्तु न सेंकी जावे और यज्ञ के दीपक को पढ़ने के काम न लाया जावे, वहां के घड़ों में से पानी न पिया जावे और झाड़ू आदि को रसोई के कार्य में न लाया जावे।

२१. यज्ञशाला में किसी को सोना नहीं चाहिए।

बृहद्-यज्ञ का सामान

(१) परना व आसन जुदा जुदा। (२) आचमन पात्र जुदा जुदा। (३) घड़ा (४) नारियल (५) गड़वी (६) झाड़ू (७) चमटा (८) स्रुवे (९) नलकी (१०) कुण्ड का ढकना (११) घंटियां चार (१२) संख या घड़ियाल (१४) स्लेट पैंसिल या कागज़ पैंसिल (१५) शुद्ध घी (१६) घी का बर्तन (१७) सामग्री (१८) सामग्री रखने के बरतन (१९) परंगा और तारें (२०) चन्दवा खद्दर का लाल रंग का (२१) वेद की पुस्कें और अन्य आवश्यक पुस्तकें। (२२) समिधा के लिये टोकरी या चंगेर (२३) दीपक और उसे सुरक्षित रखने के लिये लैम्प (२४) रुई (२५) दिया सलाई (२६) अग्नि बनाने के लिये पात्र या थाली (२७) समिधा बड़, पीपल, पलास, जंड, आम (१८) मौली गाना बांधने के लिये (२९) चौकियां आवश्यकतानुसार (३०) चन्दन की गिलटी व उर्सी (३१) चन्दन की आठ आठ अंगुल की सीधी समिधा आवश्यकता अनुसार यजमान और यजमानगी के लिये बारह समिधा प्रति दिन के हिसाब से (३२) केसर (३३) कस्तूरी (३४) जावित्री (३५) यज्ञ शेष (३६) पुष्प फल-यज्ञ के अन्तिम दिन।

बहुत ही उपयोगी बातों का यथा-स्थान संग्रह किया है। स्वाध्याय के लिये बड़ी उपयोगी पुस्तक है। उर्दू; पृष्ठ ४२४ सजिल्द; मूल्य ।।=); हिन्दी पृष्ठ ५०६ सजिल्द, मूल्य ।।।)

कर्मभोगचक्र—इसमें कर्म, विकर्म, सुकर्म, कुकर्म और उनके विस्तृत प्रभाव तथा फलों पर सविस्तार विचार करके उनके रहस्य को भली-भाँति समझाया गया है। बड़ी शांतिदायक, आनन्दवर्धक, लाभकारी तथा कल्याणप्रद पुस्तक है। कर्मचक्र से मुक्ति के अभिलाषियों को इस पुस्तक को बार-बार पढ़कर इसका अनुकरण करना चाहिये। इस विषय पर इससे उत्तम पुस्तक शायद ढूँढे भी न मिलेगी। मूल्य उर्दू प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग =)॥ प्रति। मूल्य हिंदी प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग (क्रमशः) ।), ≥), ।)

गृहस्थाश्रम प्रवेशिका—अर्थात् माता-पिता के उपदेश—जिसमें कुमारियों, कुमारों और उनके संरक्षकों के लिये कुछ आवश्यक प्रारम्भिक रहस्य की बातें बताई गई हैं। गृहस्थधर्म उद्देश्य और उसकी प्राप्ति के साधन संक्षिप्तरूप से जताये गए हैं। रजस्वला अवस्था और गर्भ की अवस्था में किन-किन बातों से सावधान रहने की आवश्यकता है—माता पिता कामवश कौन-कौन-सी त्रुटियां करते हैं और उनका प्रभाव उनकी सन्तान पर—माता का अपनी सुपुत्री को विवाह के पश्चात् विदा करते समय अन्तिम सुन्दर उपदेश—पिता का अपने पुत्र और बहु को विशेष उपदेश—अपनी इच्छानुकूल सन्तान पैदा करनी—स्त्री के वास्तविक भूषण आदि। उर्दू पृष्ठ १२० मूल्य ≥) हिन्दी पृष्ठ १४० ।)

सेवा-धर्म (हिन्दी)—सेवा धर्म पर अत्युत्तम और मनोहर व्याख्यानों का संग्रह। मूल्य =)॥

सन्ध्या-सोपान—इस में क्रिया-विज्ञान को आध्यात्मिक रूप से सिद्ध किया गया है।

मूल्य ।-)

श्री महात्मा टेकचन्द जी प्रभु-आश्रित
लिखित
अपूर्व और लाभदायक पुस्तकें

	हिन्दी	
गायत्री-रहस्य	... ।॥)	॥=
कर्म योग चक्र १म २य और ३य भाग	... ।) ≡) ।)	=)॥ प्र
पथ-प्रदर्शक (पैग़ामे रहबर)	... ।=)	=)॥
गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	... ।)	≡)
डरो, वह बड़ा ज़बरदस्त है	... ...	-)॥
योगयुक्ति, दृष्टांत मुक्तावली १म०२य भाग, रचनारहस्य रचना चरित्र, विचार विचित्र	... ... प्रति	=)॥
सन्ध्या सोपान		।-)
सेवाधर्म	... =)॥	...
यज्ञ-रहस्य	... ॥)	।)
मनोबल	... ...	≡)
वैदिक सन्ध्या और योग (ट्रैक्ट)	...)॥	...

पुस्तकें मिलने के पते—

१-म० मथुरादास, भीमसेन, कमीशन एजेंटस, टोबाटेकसिंह
२-रामचन्द मंचन्दा, समीप लाल फ़्लोर मिल्ज़,
न्यू किला गुजरसिंह, लाहौर
३-म० जोधाराम बुग्राजा, गुरुद्वारा गली, न्यू किला गुजरसिंह, लाहौर
४-मैसर्स जे० एस० संतसिंह, ताजरान कुतुब, चौकमती, लाहौर
५-कविराज पं० गुरुदत्त जी वैद्य, आयुर्वैदिक औषधालय, जम्मू तवी
६-मैसर्स राजपाल एण्ड संज़, अध्यक्ष आर्य पुस्तकालय लाहौर
७-मा० लालचन्द, किताब-घर मुलतान, काले मंडी मुलतान

मुद्रक-श्री प्रकाशचन्द्र, आर्यप्रेस लिमिटेड, १७मोहनलालरोड लाहौर